• वर्ष ६४ • अंक १६ • मूल्य ₹१५

।। ओ३म् ।।

अगस्त (द्वितीय) २०२०

पाक्षिक

परोपकारी

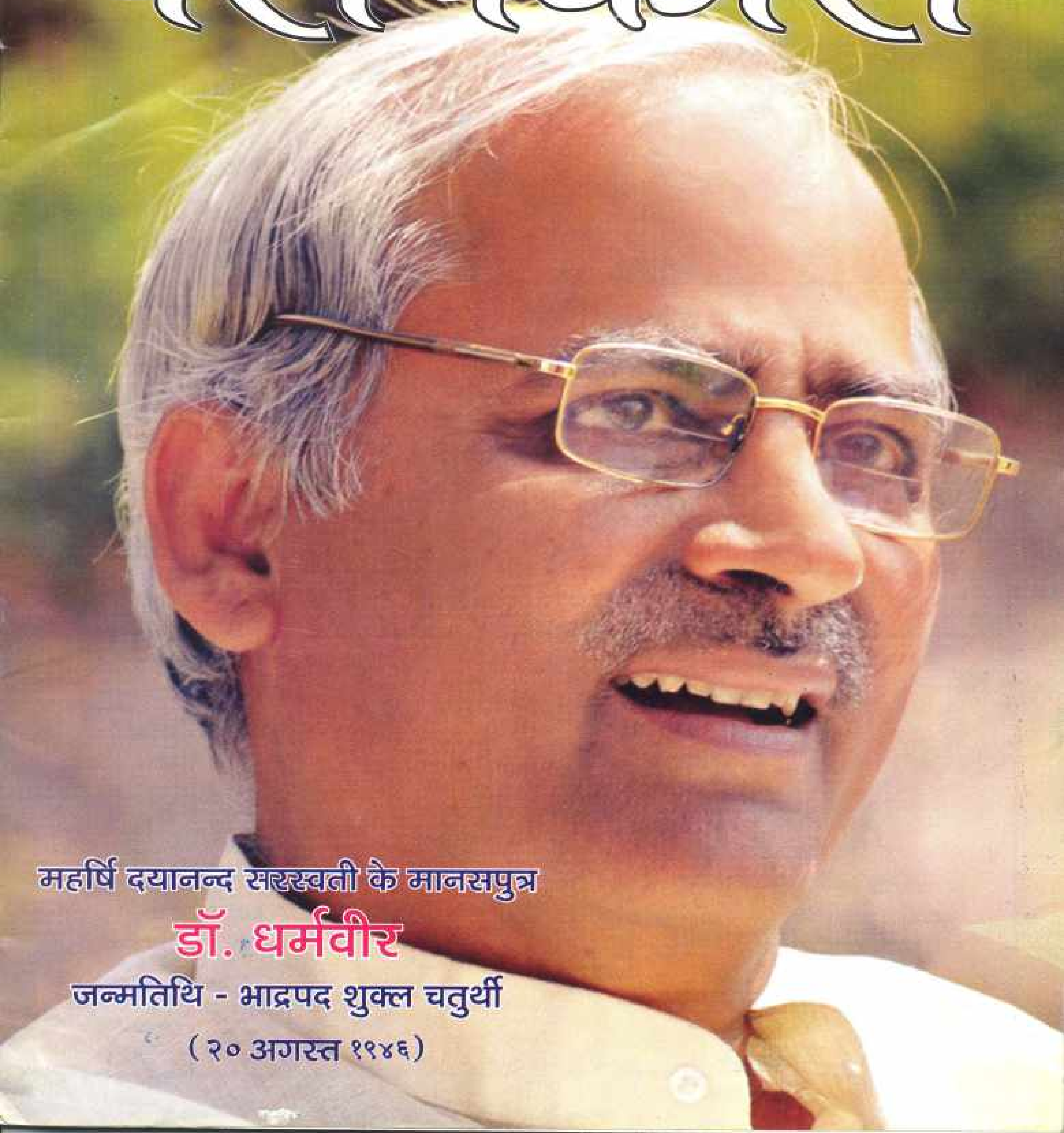

महर्षि दयानन्द सरस्वती के मानसपुत्र

डॉ. धर्मवीर

जन्मतिथि - भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी

(२० अगस्त १९४६)

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान'
में श्रावणी पर्व पर नवागंतुक ब्रह्मचारियों का उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६२ अंक : १६

दयानन्दाब्दः १९६

विक्रम संवत्ः भाद्रपद कृष्ण २०७७

कलि संवत्ः ५१२१

सृष्टि संवत्ः १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अगस्त द्वितीय २०२०

अनुक्रम

०१. इतिहास प्रदूषण का सामयिक...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५४	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. वाममार्ग का उद्भव, स्वरूप..	क्षितीश वेदालङ्कार	१४
०५. पं. कमलेश कुमार अग्निहोत्री का निधन		२५
०६. प्रधान जी : जैसा मैंने देखा	प्रभाकर आर्य	२७
०७. संस्था की ओर से...		३०
०८. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३३
०९. 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र'		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

इतिहास प्रदूषण का सामयिक साक्षात् उदाहरण

स्वार्थलोलुप, विधर्मी और विरोधी विचारधारा के लोगों ने किस स्वार्थ, लक्ष्य, योजना, धृष्टता एवं दुर्भावना के साथ भारतीय साहित्य, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता को विकृत किया है तथा उसमें किस प्रकार मिलावटें की हैं, उसको समझने-समझाने के लिए, अब अतीत का कोई उदाहरण खोजने की आवश्यकता नहीं है। उसका सामयिक साक्षात् उदाहरण नेपाल के प्रधानमन्त्री श्री खड्ग प्रसाद शर्मा ओली का आ गया है। कुछ दिनों पहले ओली ने अपने एक भाषण में अनर्गल कथन करके भारत तथा नेपाल की पुरातन समृद्ध संस्कृति, सभ्यता तथा इतिहास की सभी मर्यादाएँ भंग कर दीं।

नेपाल के प्रधानमन्त्री के. पी. शर्मा ओली विगत दिनों महाचमत्कारी बाबा के रूप में उभरे। उन्होंने पड़ोसी देश से आकाशवाणी होते ही अपनी कुर्सी बचाने के लिए एक नयी कलियुगी रामायण बयां कर डाली। उसमें भारत के उत्तर प्रदेश में हजारों/लाखों वर्षों से स्थापित अयोध्या नगरी को उठाकर चुटकी भर में नेपाल में रख दिया और कहा कि हमारे वीरगंज के पास स्थित थोरी गाँव के वाल्मीकि आश्रम में श्रीराम का जन्म हुआ था। अत: श्रीराम भारतीय नहीं, अपितु नेपाली हैं। विश्व के लेखक जो अब तक पोथे लिख-लिख कर चिल्ला-चिल्ला कर राम को भारत में जन्मा कह रहे थे, ओली बाबा ने उसका जन्म नेपाल में करा दिया और तुरत-फुरत में वहाँ की नागरिकता भी दे डाली। नेपाली झोंक में उन्हें यह भी याद नहीं रहा कि वे हिन्दू समाज में सम्मानित जिस सर्वोच्च वर्ण का बोधक 'शर्मा' गोत्र अपने नाम के साथ लगाते हैं, उससे वे स्वयं भी भारतीय मूल के सिद्ध होते हैं। भारत पर सीमा के अतिक्रमण का आरोप लगाते-लगाते उन्हें एक नया विचित्र स्वप्न भी आया। हजारों वर्षों तक कुम्भकर्णी नींद में रहने के बाद, अचानक जागकर उस स्वप्न को प्रकट करते हुए कहा कि भारत ने नेपाल की सांस्कृतिक सीमा का भी अतिक्रमण किया है!! अर्थात् यह भी नया ज्ञान बखाना कि देश की सीमा केवल भौगोलिक ही नहीं होती, अपितु संस्कृति-सभ्यता की भी होती है! तब हमें भी ध्यान आया कि जब यह भी सीमा होती है, तो भारत की सांस्कृतिक सीमा का अतिक्रमण तो बाहरी देशों और विचारधाराओं द्वारा विगत एक हजार वर्षों से हो रहा है! भारत और नेपाल की सांस्कृतिक सीमा का अतिक्रमण तो वर्षों से उन्होंने भी किया है, जिन्होंने ओली के कान में उक्त षड्यन्त्रकारी मन्त्र फूंका है।

ओली का कथन इस कारण विवेचनीय है कि वे एक बड़े जिम्मेदार पद पर हैं। वे एक हिन्दू बहुल देश के प्रधानमन्त्री हैं। ओली बाबा का उक्त बयान बुद्धिहीन, बेतुका, तर्क-प्रमाण रहित और नितान्त हास्यास्पद भले ही हो, किन्तु चिन्ताजनक अवश्य है। क्योंकि यहाँ क्या मान्य हो जाये, कहा नहीं जा सकता। हमारे देखते-देखते माता सन्तोषी जैसी कल्पित माताएँ और उनके मन्दिर बन गये। लोग उस कल्पित देवी की व्रत-उपासना भी करने लग गये। देखते-देखते अल्लाह के उपासक और हलाल का मांस खाने वाले, मरने पर कब्र में दफनाये गये चाँद मियाँ (साई) हिन्दुओं के भी पूज्य देवता मान लिये गये। हिन्दुओं में कुछ भी हो सकता है, क्योंकि धर्म के मामले में यह अदूरदर्शी और घोर अन्धविश्वासी समाज है।

अब खतरा इस बात का है कि पूर्वकाल में लक्ष्यपूर्वक विकृत करके लिखी गई तथाकथित ३०० रामायणों की तरह चमचे-कड़छे लोग और आर्य विचारधारा-विध्वंसक वर्ग एक भ्रामक नयी ओली-रामायण न बना डालें। प्रसंगवश पाठकों को बता दें कि वे तीन-सौ रामायणें केवल नाम की रामायण हैं, वस्तुत: नहीं। उनमें विधर्मियों और विरोधियों द्वारा लिखी गई ऐसी भी नामधारी रामायणें भी हैं जिनमें सनातनी, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, वामपन्थी सबने अपने अभीष्ट ढंग से तथ्यों को बदला है अर्थात् राम के इतिहास को विकृत या विद्रूप किया है या उसमें सन्देह उत्पन्न किया है। यतोहि राम भारतीय संस्कृति के सुदृढ़ आधारस्तम्भ हैं। किसी प्रकार से उसको डांवाडोल करने का इनका लक्ष्य रहा है। सनातनियों ने अन्धश्रद्धावश उनके चरित्र को

सम्भव से असम्भव कोटि का बना दिया। जैनियों ने राम, लक्ष्मण, रावण को जैनी घोषित कर दिया। बौद्ध साहित्य में तो बदले की भावना से विकृति का चरम रूप है। उन्होंने राम सीता को भाई-बहन लिखकर विवाह भी वर्णित कर दिया। राजधानी बदलकर वाराणसी लिख दी। इसी कारण रामकथा के विख्यात शोधकर्ता फादर कामिल बुल्के ने लिखा है कि ''बौद्धों का दशरथ जातक ग्रन्थ रामायण का विकृत रूप है।'' बौद्ध यदि वामपन्थी हो जाता है तो वह भारतीय धर्म-संस्कृति के लिए 'करेला और नीम चढ़ा' हो जाता है। ईसाइयों, वामपन्थियों और काँग्रेसियों ने तो श्रीराम को कल्पित व्यक्ति ही घोषित कर दिया। अत: ऐसी पुस्तकों को रामायण कहना ही श्रीराम का अपमान करना है। उनका रामायण नाम रखा जाना भी धूर्ततापूर्ण है। इसलिये राम के आस्थावानों को उन पुस्तकों को भूलकर भी रामायण न मानना चाहिये और न कहना चाहिये।

इतिहास, संस्कृति और साहित्य को विकृत करने वाला व्यक्ति-प्रमाण, उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, परिणाम-दुष्परिणाम को नहीं देखता। उसका लक्ष्य केवल अपनी विकृति और विद्रूपता को स्थापित-प्रचारित करना होता है। उसके कहे-लिखे को औचित्य की कसौटी पर कसना समीक्षकों का दायित्व होता है। वही हम यहाँ पर कर रहे हैं। अपने भाषण में ओली ने जिस महर्षि वाल्मीकि के आश्रम का नाम लेकर उक्त अफवाहें उड़ाई हैं, उसी ऋषि ने अपनी रामायण में नेपाल की एवं ओली द्वारा कथित थोरी गाँव की और वहाँ स्थित आश्रम की चर्चा एक बार भी नहीं की है; जबकि उत्तर प्रदेश में स्थित अयोध्या का अत्यन्त स्पष्ट सन्देहरहित भौगोलिक वर्णन है। वाल्मीकि लिखते हैं कि राम के पिता दशरथ कोसल (अवध) देश के राजा थे और उनकी राजधानी अयोध्या सरयू नदी के दक्षिण तट पर स्थित थी (बालकाण्ड अ.५)। सन्तान की प्राप्ति के लिए दशरथ ने जो पुत्रेष्टियज्ञ किया था, वह भी उसी सरयू नदी के उत्तर तट पर आयोजित किया गया था (**सरय्वाश्च उत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञो अभ्यवर्तत**, बालकाण्ड १४/१)। यज्ञ के पुरोहित मुनि ऋष्यशृंग अङ्ग देश से चलकर इसी स्थान पर पधारे थे और यज्ञ सम्पन्न कराया था। इसी अयोध्या के राजमहल में श्रीराम और भाइयों का जन्म हुआ था (बाल.१८/७-१६)। ओली बाबा अब इस सरयू नदी को उठाकर वीरगंज के थोरी गाँव के पास कैसे ले जायेंगे? इसी प्रकार वाल्मीकि का आश्रम भी गंगा के दक्षिण में तमसा (टोंस) नदी के तट पर स्थित लिखा है (बाल. २/४)। यों तो लोगों ने स्थान-स्थान पर महर्षि वाल्मीकि के नाम पर आश्रम बना रखे हैं, किन्तु ओली बाबा वाल्मीकीय रामायण में वर्णित मूल आश्रम को उठाकर थोरी गाँव में कैसे ले जायेंगे? निराधार बात कहने वाले ओली इन बिन्दुओं का उत्तर क्यों नहीं दे रहे?

वाल्मीकीय रामायण से लेकर ओली के बयान तक किसी लेखक ने नहीं कहा कि राम की अयोध्या भारत से बाहर है। ओली बाबा यह भी याद कर लें कि राम-लक्ष्मण इसी अयोध्या से चलकर ऋषि विश्वामित्र के साथ उनके सिद्धाश्रम में गये थे, फिर मिथिला पहुँचे थे और सीता से विवाह करके लौटे थे। वनवास के लिए इसी अयोध्या से चलकर ही शृंगवेरपुर (सिंगरौर), प्रयाग, चित्रकूट (कामता गिरि) होते हुए श्रीलंका तक गये थे, और वापिस लौटे थे। इसी अयोध्या के उपनगर नन्दिग्राम (नन्दगाँव) में रहकर भरत ने राज्य-कार्य किया था। तो ओली इन सबको वीरगंज के थोरी गाँव में कहाँ से जुटायेंगे? ऐसा झूठ बोलने का भी क्या लाभ जो एक कदम भी न चल पाये?

नेपाल या विदेह (मिथिला) देश हजारों वर्षों से आर्य/हिन्दू धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं का देश रहा है। वह अपने जन्म से ही धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक रूप में आर्यावर्त से सम्बद्ध रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, महाभारत आदि में विस्तृत उल्लेख आते हैं कि महाराज जनक के मुनि याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मवेत्ता आचार्यों से समय-समय पर शास्त्रीय संवाद होते रहते थे। शांखायन श्रौतसूत्र एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य की जानकारी देता है कि उपनिषद् काल में काशी, कोसल और विदेह राजाओं का 'जल जातूकर्ण्य' नामक एक ही राजपुरोहित था। नेपाल शिव, राम-कृष्ण का अनुयायी रहा है। श्रीराम भी इक्ष्वाकु के वंशज थे और मिथिला के राजा भी। राम भी सूर्यवंशी

थे और मिथिला के राजा भी उसी के वंशज थे। विदेह देश की स्थापना भी आर्यावर्त मूल के आर्यराजा विदेघ माथव ने की थी और मिथिला (जनकपुर) की उसके पुत्र मिथि ने। शतपथ ब्राह्मण(१/४/१) में विदेह देश की स्थापना का महत्त्वपूर्ण सुखद इतिहास वर्णित है। पहले विदेह के पूर्वज राजाओं का राज्य उत्तर भारत में सरस्वती के तटवर्ती प्रदेश में था। वैदिककाल में सरस्वती नदी सूख गई तो प्रजा का जीवन चलाना कठिन हो गया। विदेघ माथव ने यहाँ से स्थानान्तरण करने का निर्णय लिया। यज्ञ की तीन अग्नियों को आगे रखकर वे उत्तर-पूर्व दिशा में बढ़ते गये। वर्तमान नेपाल के मिथिला में खाली पड़े वन-प्रदेश को देख वहाँ तीन यज्ञाग्नियों की स्थापना करके अपना नया राज्य स्थापित किया। इसी आधार उस प्रदेश को त्रिभुक्ति=तीरभुक्ति या तिरहुत भी कहा जाता है, अर्थात् तीन यज्ञाग्नियों में आहुति देकर जिस राज्य की स्थापना हुई है। वहाँ की संस्कृति वैदिक थी। यदि श्री ओली इस एक संस्कृति के आधार पर श्रीराम को नेपाल का कहते कि राम नेपाल के हैं और नेपाल राम का है, तो उनका कथन तथ्याधारित और सुखद होता, किन्तु उन्होंने तो निजी राजनीतिक स्वार्थवश नितान्त तथ्यहीन अप्रामाणिक और कलंकित बात कह डाली।

नेपाल की अखण्ड भारत के अन्तर्भूत एक राज्य के रूप में अवस्थिति अतीत में पर्याप्त कालावधि तक रही है। इस बात के लिखित ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हैं कि अन्तर्भूत या स्वतन्त्र शासन में रामायण, महाभारत, सम्राट अशोक आदि के समय नेपाल भारत का अंग रहा है। काव्य मीमांसा में विदेह और नेपाल को आर्यावर्त के प्राच्य देश के अन्तर्गत परिगणित किया है

तत्र वाराणस्या पुरतः

पूर्वदेशः...विदेहनेपालपुण्ड्र...प्रभृतयो जनपदाः

(९३/२०-२२)

महाभारत में वर्णित है कि नेपाल-विदेह को पहले महाराज पाण्डु ने जीता, फिर भीम ने। दुर्योधन के द्वारा अंग देश (भागलपुर, बिहार) का राजा बनाने के बाद कर्ण ने नेपाल को अपने अधीन करदाता राज्य बनाकर रखा था।

विदेहांश्च...जित्वैतान् समरे वीरःचक्रे बलिभृतः पुरा,

नेपालविषये ये च राजानस्तानवाजयत्

(महाभारत, कर्णपर्व ८/१८-२०, वनपर्व २५४/७)

बौद्ध युग में यह भारत के सोलह जनपदों में से एक था। नेपाल की वर्तमान राजधानी काठमांडू के पश्चिमोत्तर में सम्राट् अशोक की पुत्री चारुमती ने देवीपाटन नामक नगर की स्थापना की थी। वहीं बागमती नदी के पश्चिमी तट पर विश्वप्रसिद्ध पशुपतिनाथ (शिव) का मन्दिर है। भारत के ब्राह्मण ही उसके पुजारी बनते रहे हैं। भारत के शास्त्र ही नेपाल के शास्त्र माने जाते रहे हैं। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भारत के इतिहास के अन्तर्गत ही नेपाल का वर्णन मिलता है। नेपाली भाषा संस्कृत परम्परा में अपभ्रंश से विकसित आर्यभाषा है। उसकी लिपि भी देवनागरी है। हिन्दी भी वहाँ भारतीय प्रदेशों की तरह बोली जाती है।

अपना राजनीतिक स्वार्थ साधने के लिए ऐसे सुदृढ़ सम्बन्धों में ओली ने पलीता लगाने की निन्द्य साजिश की है। उसके उक्त कथन से रामभक्तों को गहरा आघात लगा है। मनुस्मृति, रामायण, महाभारत इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में स्वार्थी लोगों ने इसी प्रकार मिलावटें की हैं और प्राचीन भारत के गौरवमय इतिहास को विकृत किया है।

ओली की इस घटना से इस युग के पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि इतिहास कैसे विकृत होता है और साहित्य में मिलावटें कैसे-कैसे होती हैं। **जब कोई व्यक्ति विरोधी विचारधारा को स्वीकार कर लेता है तो उसका पहला दुष्परिणाम अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने लोगों का विरोध और हानि करने की मंशा के रूप में प्रकट होता है। गत एक हजार वर्षों में आर्यों/हिन्दुओं को लाखों की संख्या में कत्ल करने वाले वही अपने थे, जिन्होंने स्वार्थ, लोभ-लालच भय जाने-अनजाने में अपनी आर्य विचारधारा बदल ली थी। आज भी आर्य/हिन्दू धर्म और संस्कृति का संरक्षक न हमारा कोई है, न हम स्वयं सचेत हैं। कोई इनके अपमान में कुछ भी कह दे और कोई कुछ भी कर डाले, कोई प्रतिक्रिया ही नहीं होती। इसी कारण हमारे धर्म और संस्कृति प्रतिदिन ह्रास की ओर बढ़ रहे हैं।**

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

मृत्यु सूक्त-५४

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्।।

हम ऋग्वेद के दशम मण्डल के १८ वें सूक्त के दसवें मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। इस सूक्त में मृत्यु के सम्बन्ध में चर्चा है। हमने देखा था व्यक्ति की मृत्यु होने से संसार में क्या होता है, परिवार के मुखिया की मृत्यु होने पर क्या होता है, राजा की मृत्यु होने पर क्या होता है। मन्त्र कहता है कि यह जो भूमि है वह हमको मृत्यु से बचाने वाली है। मृत्यु से बचाने का काम मेरी धरती करती है, मेरी भूमि करती है। **निर्ऋतेरुपस्थात्**- इसके अन्दर से तुझे वे साधन वे तत्त्व मिलते हैं। यदि तू इसकी रक्षा करता है तो यह भूमि तेरी रक्षा करती है।

सिद्धान्त क्या है? हम समझते हैं कि संसार में हम किसी के साथ कुछ भी व्यवहार कर सकते हैं। हम किसी को भी दण्डित कर सकते हैं, किसी भी जड़ वस्तु का जैसा चाहें दुरुपयोग कर सकते हैं। लेकिन मूल बात जो हम भूल जाते हैं कि जिसके साथ हम जैसा व्यवहार करते हैं हमें उसका फल, उसका परिणाम उसी के अनुकूल मिलता है। चेतन के साथ आपने बुरा किया तो वह आपसे लड़ लेता है, संघर्ष कर लेता है, हथियार चला लेता है, मार लेता है। लेकिन यदि आप यह समझते हैं कि जड़ के साथ आप कुछ भी कर लें आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा, ऐसा नहीं है। उसका फल आपको मिलेगा क्योंकि इन्हीं वस्तुओं से आपका काम पड़ता है, यही वस्तुएं आपके उपयोग में आती हैं। यदि आपने इनका सदुपयोग नहीं किया, इनकी सुरक्षा नहीं की तो ये समय पर आपके काम भी नहीं आतीं।

यहाँ मन्त्र में बहुत अच्छी शब्दावली काम में ली गयी है।

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्-
यहाँ रक्षा करने के लिए जो उदाहरण दिया है वह अद्भुत है, बहुत अर्थयुक्त है। कहा है कि यदि तुझे बचना है तो शरण में आ जा। जो भूमि माँ है इसकी शरण में आ जा। यहाँ पर भूमि को माता कहा गया है। इसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं कि हमारी संस्कृति में, हम जिनसे लाभान्वित होते हैं, हम उनको सम्मानित करते हैं, हम उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, हम उनका आदर करते हैं, हम उनकी सुरक्षा करते हैं। चाहे वह वस्तु जड़ है या मनुष्य आदि चेतन हैं, या पशु-पक्षी आदि प्राणी हैं, उनके प्रति हमारे अन्दर कृतज्ञता का भाव है, सहयोग लेने के लिए धन्यवाद का भाव है। यहाँ पर भी भूमि को माता कहा है, क्योंकि यह पृथिवी **सुशेवा** है, यह बहुत सुख देने वाली है, इसके अन्दर सुख देने का सामर्थ्य छिपा हुआ है। इसलिये यह पूरी फैली हुई जो पृथिवी है, यह बता रही है, यह कह रही है कि मैं तेरे लिये हूँ। यदि तू मेरा सदुपयोग करेगा, मेरी सेवा करेगा, मेरी रक्षा करेगा तो मैं तेरी रक्षा करूँगी। **त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात्** किससे रक्षा करेगी- मृत्यु से।

इस पृथिवी के द्वारा मृत्यु से रक्षा कैसे होती है? जो कुछ आपको बचाने वाली चीज है, वह इस पृथिवी पर ही है। जल है, वायु है, अन्न है, जो कुछ फूल-फल हैं, वे सब इस पृथिवी पर हैं और इस पृथिवी के पदार्थों का जब हम उपयोग करते हैं तो हमें उससे लाभ मिलता है। ये सब मुझे बचाने वाली हैं, सुख देने वाली हैं। समस्त सुख के जो

पदार्थ हैं वो इस पृथिवी से ही प्राप्त होते हैं। अन्न इस पर ही उत्पन्न होता है, फल-फूल इस पर ही मिलते हैं। अतः कहा गया- हे मनुष्य! तू इस भूमि माता की शरण ले, बहुत ही सुकुमार सुन्दर जैसे कोई युवती होती है, वैसे ही यह पृथिवी हमारे कल्याण और सुख का कारण है। इसकी यदि हम रक्षा करते हैं, इसका पालन करते हैं तो यह मृत्यु से बचाती है।

अब इन मन्त्रों का यदि आप विवेचन करके देखें तो एक तरह से यह बताया गया है कि मृत्यु के रोकने के उपाय क्या हैं। पहले बताया कि मृत्यु होने की परिस्थिति क्या है। मृत्यु का प्रसंग कैसे आता है। हमने पुराने सन्दर्भों में देखा कि मृत्यु कैसे आती है। एक प्रक्रिया है बनने की और बिगड़ने की। उसमें हमें क्या करना चाहिये, कैसे करना चाहिये, अपने आपको कैसे रखना चाहिये, आदि-आदि बातों को देखा। उसमें प्राकृतिक क्या है, अप्राकृतिक क्या है। हमने देखा कि प्राकृतिक तो यह है कि जिस क्रम से कोई व्यक्ति पैदा हुआ है, उसी क्रम से यदि मर जाता है तो यह प्रकृति है, विकृति नहीं है, दोष नहीं है। लेकिन यदि इसके विपरीत होता है तो यह दोष है, विकृति है। उससे कैसे बचा जाये इसकी चर्चा है। तो व्यक्ति के साथ मृत्यु की परिस्थिति की चर्चा की, परिवार के साथ मृत्यु की परिस्थिति की चर्चा की और देश के साथ मृत्यु की परिस्थिति की चर्चा की। इस मन्त्र में मृत्यु से बचने के उपायों की चर्चा है। ये उपाय कहाँ से प्रारम्भ होंगे? हमारा अस्तित्व जिन पदार्थों से बना है, उन्हीं पदार्थों को देखने से, समझने से, उनके सदुपयोग से हमारा अस्तित्व बना रहता है। इस शरीर को अध्यात्म की भाषा में 'रथ' कहते हैं। यह शरीर एक रथ है, वाहन है, गाड़ी है, लेकिन कोई ऐसी-वैसी गाड़ी नहीं है, नहीं तो इसको **रथ** नहीं कहते। **रथ** शब्द का अर्थ है, **रममाणः अस्मिन् याति**। मतलब सुखपूर्वक जिससे यात्रा करता है वह रथ है। तो हमारा यह जो शरीर है, इसको ऋषियों ने रथ कहा है। कठोपनिषद् की एक पंक्ति है-

आत्मानम् रथिनम् विद्धि, शरीरम् रथमेव तु।

आत्मा तो रथी है और शरीर उसका रथ है। रथी कहते हैं उसे जो रथ का स्वामी है। रथ के मालिक को रथी कहते हैं। इसको आप कहते हैं गाड़ीवाला, गाड़ीवान अर्थात् जिसकी गाड़ी है, वैसे ही रथी कौन है, रथ है जिसका, जो रथ को चला रहा है। तो कहा कि उस आत्मा को आप रथी मानो, और जो यह शरीर है यह रथ है। इसमें रमण करते हुए चलता है, आनन्द मनाते हुए जाता है। सुखपूर्वक यात्रा करता है।

यह रथ सुखपूर्वक यात्रा का कारण बने उसके लिए इस मन्त्र में कहा गया है **ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत**- ऊर्णम्रदा, ऊन के समान कोमल। तो यह धरती है **निऋतेरुपस्थात् आत्वा पातु**- यह तुझे निऋति से, भय से, शोक से, दुःख से दूर करने वाली है। यह सहज सुख देने वाला शरीर है, इसके सुख देने की जो क्षमता है, जो साधन हैं वे प्रकृति पर निर्भर करते हैं और इसीलिये हमारी प्रवृत्ति प्रकृति की ओर होती है। जैसे कहा

आत्मानम् रथिनम् विद्धिं, शरीरम् रथमेव तु।
बुद्धिम् तु सारथिम् विद्धि मनः प्रग्रहेव च।

बुद्धि को उन्होंने सारथी कहा है क्योंकि रथ है, तो रथ में कोई चलानेवाला होगा, उसे सारथी कहते हैं। मन जो है, वह प्रग्रह, लगाम है।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयान्स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम् भोक्तेत्याहुर्रमनीषिणः।

इन्द्रियाँ घोड़े हैं और जो-जो इन्द्रियों के विषय हैं, वे घोड़े उनकी ओर गति करते हैं तो यह सामान्य रूप से हमारे शरीर की जो प्रवृत्ति है, यह भौतिक पदार्थों की ओर होती है, प्रकृति की ओर होती है, क्योंकि हमारी रचना, हमारा निर्माण, हमारी पुष्टि हमारा बलाबल इसी पर निर्भर करता है।

हमारी इन्द्रियाँ, हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा शरीर ये सबकी सब प्राकृतिक चीजें है, भौतिक चीजें हैं, जड़ चीजें हैं। जितनी जड़ वस्तुएँ हैं वे भौतिक हैं, भूतों से बनी हुई हैं। प्राकृतिक हैं, प्रकृति से बनी हुई हैं। अन्तर कितना है- मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं और ये एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इनका सम्बन्ध सीधा आत्मा से होता है। शरीर का सीधा सम्बन्ध आत्मा से नहीं होता, माध्यम से होता है,

मन बुद्धि इन्द्रियों से होता है। हमारी कोई भी इन्द्रिय जैसे हाथ, पैर, आँख, ये अपने आप काम नहीं कर सकते, केवल मन के चाहने से भी काम नहीं कर सकते, बुद्धि का निर्देश भी तब तक नहीं हो सकता, जब तक आत्मा उससे जुड़ा हुआ न हो। आत्मा बुद्धि को निर्देश देता है, बुद्धि मन को चलाती है। मन की प्रेरणा से इन्द्रियाँ गति करती हैं और इन्द्रियाँ भौतिक पदार्थों को जानती, समझती, देखती हैं। इस दृष्टि से इस मन्त्र में बात कही है कि इस भूमि के अन्दर आपके लिए सब कुछ है, जो संसार में आवश्यक है। संसार में आने पर आपका सम्बन्ध प्रकृति से होता है और क्योंकि आपका निर्माण प्रकृति से होता है तो इसलिए जीवनभर आपको इन पदार्थों की आवश्यकता होती है, उपयोग करना होता है। आप शरीर को बनाकर रखने के लिये सदा यही देखते हैं कि प्रकृति में कौनसा पदार्थ है जिसकी आपके अन्दर कमी हुई है, उसको लेते हैं। कौनसा पदार्थ आपका बढ़ गया है, उसे उन्हीं उपायों से हटाते हैं। यह चीज निरन्तर होती हुई हमारी रक्षा करती है, हमें मृत्यु से बचाती है। हमको अन्न न मिले तो हमारी मृत्यु हो जाएगी। हमें जल न मिले तो हमारी मृत्यु हो जाएगी। जीवन की और कोई सामग्री न मिले तो हमारी मृत्यु हो जाएगी। तो यह प्रकृति ही हमें बचाती है।

परमेश्वर ने एक अद्भुत काम किया हुआ है। हम यह समझते हैं कि यह चीज महंगी है इसलिए हमें लेनी चाहिये। सोना है, महँगा है, बहुत आवश्यक इसलिये हम समझते हैं कि महँगा है। ऐसा है नहीं। वास्तव में मूल चीज यह है कि महँगा तो तब होता है जिसकी आवश्यकता अधिक हो। संसार की वस्तुओं में जो चीजें सम्पत्ति में गिनी जाती है वो वास्तविक सम्पत्ति नहीं है क्योंकि उनके बिना काम चल सकता है। आपका सोने के गहने के बिना काम चल सकता है, दुकान-मकान के बिना काम चल सकता है, कपड़े-कंबल के बिना काम चल सकता है। थोड़ा असुविधा से चलता है, थोड़ा कम चलता है। वास्तव में हमारी सम्पत्ति है, जिसके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता है वह तो अन्न है, जल है, वायु है, अग्नि है और जिसके अन्दर रह रहा है, यह आकाश है। इनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। वास्तव में सबसे मूल्यवान यदि संसार में कोई सम्पत्ति है तो जल, वायु, अग्नि, अन्न, पृथिवी ये हैं लेकिन हम समझते हैं कि दूसरी चीजें मूल्यवान हैं, महत्त्वपूर्ण हैं और परमेश्वर ने उन्हें इतनी प्रचुर मात्रा में हमें दिया है कि उनका मूल्य हमें मूल्य लगता ही नहीं। हमें वे सामान्य साधारण लगती हैं। दूसरी चीजें हमें अमूल्य लगती हैं, भले ही वे हमारे काम में नहीं आती हैं, लेकिन क्योंकि वे हमारे लिए सुलभ नहीं हैं, सहज नहीं हैं हमें दुर्लभ हैं, हम उन्हें मूल्यवान समझते हैं। होना यह चाहिये कि जो हमारे लिए आवश्यक है हम उसे मूल्यवान् समझें, जो वस्तु हमारे लिये जितनी अधिक आवश्यक है हमें उसे उतना अधिक मूल्यवान मानना चाहिये। लेकिन परमेश्वर की जो कृपा है उसमें सबसे बड़ी बात यह है कि जितनी अनिवार्य वस्तुएं हैं, जो जीवन के लिए बहुत उपयोगी हैं, आवश्यक हैं, उनको परमेश्वर ने इतनी बड़ी मात्रा में हमें दिया हुआ है कि हमें उनके मूल्य का कभी भान ही नहीं होता। हम उसे बहुत सामान्य समझते हैं, व्यर्थ की समझते हैं। हम संसार के व्यवहार में उपलब्धि से मूल्य का निर्धारण करते हैं अतः जो वस्तु जितनी अधिक मात्रा में उपलब्ध है वह हमारे लिए व्यर्थ है। लेकिन परमेश्वर कहता है, जो वस्तु जितनी आवश्यक है, परमेश्वर ने इसलिए उसे इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध कराया है कि वो आपको मृत्यु से बचा सके। इसलिये इस मन्त्र में पृथिवी के द्वारा मृत्यु से कैसे बचा जा सकता है इसकी चर्चा की है।

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

–महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

विचारिये- हमारे देश के एक जाने माने इतिहासकार डॉ. ईश्वरी प्रसाद जी ने लगभग नब्बे (९०) वर्ष पूर्व देश के एक लोकप्रिय लेख में यह लिखा था कि सन् १८६९ में काशी शास्त्रार्थ में ऋषि दयानन्द ने यह घोष किया कि ईश्वर एक है, वह सर्वव्यापक है, सृष्टिकर्त्ता है, उसकी कोई मूर्ति नहीं। वेद में प्रतिमा-पूजन का कतई कोई प्रमाण नहीं है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि ऋषि जी का यह व्याख्यान- यह कथन उस सभा में ऐसा ही था जैसे किसी भरी सभा में बम्ब विस्फोट से खलबली मचती है, किसी को इसके प्रतिवाद में कुछ न सूझा।

इन्हीं डॉ. ईश्वर प्रसाद जी ने अपने इतिहास के एक ग्रन्थ में विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा मन्दिरों की लूट की चर्चा छेड़कर यह वाक्य लिखा है, "हिन्दुओं ने मन्दिरों में स्वर्णमूर्तियाँ बनाकर, पत्थर की मूर्तियों पर हीरे और आभूषण चढ़ाकर लुटेरों को, आक्रमणकारियों को तो प्रलोभन दे दिया, परन्तु मन्दिरों की रक्षा न कर सके।"

अब भाजपा को प्रोग्राम देनेवालों की सूची में जड़पूजा, नदी, नाले, पेड़, पर्वत, तुलसी की पूजा के प्रचार को प्राथमिकता दी जा रही है। भगवानों की बाढ़ आ रही है। जड़-चेतन का हिन्दू के लिये कुछ भेद ही नहीं रहा। दर्शनशास्त्र बताते हैं कि जब मन के सामने कोई विषय नहीं होता तो इसी को ध्यान कहा जाता है। अब सरकार योग-योग का ढोल पीटती है। नेता लोग योग का नाटक करते हुए मूर्तियों की पूजा के सब कर्मकाण्ड कर रहे हैं।

योग आसन करने-करवाने वाला प्रत्येक बालक स्वयं को योगिराज मानकर भ्रमित हो रहा है। यदि योग आसन करके मन्त्री लोग और योगशिक्षक स्वयं को योगी मानकर तृप्त हो रहे हैं तो फिर जीवनभर अहिंसा-व्रत का पालन करनेवाला, प्राणियों की सेवा में जीवन देनेवाला प्रत्येक व्यक्ति योगेश्वर है। योग अंगों में किसी भी एक अंग में सिद्धि प्राप्त प्रत्येक व्यक्ति को फिर क्या हम पतञ्जलि महर्षि जी के आस-पास मान लें?

गंगा कल तक काशी में बुलाती थी। भैरों की नगरी काशी खबरों में रहती थी। गंगा चलकर घर-घर ग्राम-ग्राम पहुँच रही है। अब थाली व दीपक लेकर आगे होकर आरती उतारने वाले नेता क्यों नहीं आते?

कल तक गुजरात माडल में गुजरात के 'नमक' तक की चर्चा थी। गुजरात के पाखण्डमर्दन पताका फहराने वाले महर्षि दयानन्द का भी नाम लिया जाता था। अब 'बर्फानी बाबा' को महिमामण्डित करते हुए इन लोगों को वेदोपनिषद्, सन्त तुकाराम, कबीर जी, सन्त तुकाराम, गुरु नानक, राजा राममोहन राय और ऋषि दयानन्द सब भूल गये। प्रणव जप (ओ३म्) की उपासना पर गुरुनानक, ऋषि दयानन्द ने तो जो सिखाया सो सिखाया ही सत्ताधारी दल के तीर्थ कन्याकुमारी के शिला स्मारक में भी 'योग केन्द्र' में हमने 'ओ३म्' लिखा तो देखा। वहाँ तब तक तो कोई मूर्ति नहीं थी। ओ३म् का ध्यान करने को कहा जाता था। अब वह सीख सत्ता के मद में भूल ही नहीं गई उलट गई है। तिलक लगाकर एक-एक मूर्ति के सामने गुणी ज्ञानी आदरणीय आदित्यनाथ जी को नमन करते देखकर हृदय दुखता है।

प्राचीन संस्कृति की दुहाई देनेवाले इन सत्ताधारियों के शुभ मुहूर्तों की पोल पग-पग पर खुल रही है। हम लम्बे समय से राम-मन्दिर के निर्माण की नई-नई तिथियों की घोषणा सुनते चले आ रहे हैं। इनकी फलित ज्योतिष की पोल इनके 'बर्फानी बाबा' की यात्रा ने भी खोल दी। दिन-रात 'बर्फानी बाबा' की यात्रा का प्रचार करके, गुप्त सूचनायें पाकर यात्रा निरस्त करने के शुभ निर्णय पर हमारी शुभकामनायें स्वीकार कीजिये और कोई धर्मात्मा मन्त्री हमें इतना तो बता दे कि 'बर्फानी बाबा' अमरनाथ के लिङ्ग का नया नाम यह हिन्दुओं के कौनसे ग्रन्थ में से आपको मिला है? यदि यह नाम प्राचीन ग्रन्थों में था तो आपको दस- पन्द्रह वर्ष पहले तक इसका क्यों पता न चला?

आप एक सूची अपनी सरकार की ओर से जारी क्यों नहीं करते कि भगवान कितने हैं। वे कहाँ-कहाँ रहते हैं? उनके नाम क्या-क्या हैं? ज्योतिर्लिंग तो बारह हैं। यह ज्ञान आपने दे दिया। अन्य-अन्य इन्द्रियाँ कहाँ गईं? सबके

धाम, तीर्थस्थान गिना दीजिये? बता दीजिये।

हम यह स्पष्ट कर दें कि हम न तो आपके विरोधी हैं और न किसी राजनीतिक दल से जुड़े हैं। सत्यासत्य के निर्णय का साहस दिखाने की आप लोगों से आशा करते हैं। धार्मिक मान्यताओं पर सत्ता पक्ष की हास्यास्पद व्यवस्थाओं (फतवों) को पढ़ –सुनकर यह पूछते हैं कि मन्दिरों की धन-सम्पदा, स्वर्ण आदि के भण्डारों का श्रीकृष्ण जी को आप स्वामी बता रहे हो, जो सोमनाथ आदि मन्दिरों से लुटेरे धन लूटकर ले गये वह अब किसका है? प्रत्येक विषय पर आपको नई-नई व्यवस्था देने का अभी तो अधिकार प्राप्त है। लगे हाथ यह भी बता दो कि भारत से बाहर भी भगवान् ने कभी अवतार लिया क्या? लिया तो कहाँ-कहाँ?

भारत की राजधानी दिल्ली में भाई बालमुकन्द आदि कई क्रान्तिवीरों ने मातृवेदी पर प्राण चढ़ाये। न तो राहुल के परिवार ने आज तक उनका नाम लिया और न याद किया और न ही भाजपा को उनकी याद आई। इस बिन्दु पर आप दोनों दल एक हैं। इस एकता को हम क्या शुभ मानें?

अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, जातिवाद देश के लिये कलङ्क थे। इस महारोग के उन्मूलन के लिये बलिदान देनेवालों यथा वीर रामचन्द्र, भाई श्यामलाल, वीर मेघराज, भक्त फूलसिंह के स्मारक बनाने, याद मनाने से आप लोगों को कौन रोकता है? आप इस शुभ काम के करने से भी डरते हैं? देशहित में इन सब बातों पर विचारिये। अन्धविश्वासों को चिपकने व देश पर लादने से कुछ न बनेगा। हानि ही हानि होगी।

श्रीरामचन्द्र-श्रीकृष्णचन्द्र और वेद- श्री रामचन्द्र जी के चरित्र, गुणों तथा मान्यता का वाल्मीकि ऋषि की रामायण में जैसा वर्णन मिलता है, आज श्रीरामचन्द्र जी के नामलेवा उससे कट चुके हैं। उनका उससे कुछ लेना-देना नहीं। यह चिन्ता का विषय है। राम यज्ञों की रक्षा करते हैं। यज्ञ-हवन करते हैं। सन्ध्या करते हैं। हनुमान माता सीता को खोजते हुए यह कहते हैं, सन्ध्या का समय है। इस समय माता सीता वाटिका में सन्ध्या करती मिलेंगी। रामचरितमानस में श्रीराम और श्रीलक्ष्मण के सन्ध्या करने का वर्णन मिलता है। एक गीत में हमने कभी लिखा था-

राम वनों में यज्ञ रचाते, सीता माता सन्ध्या करती
होहल्ला सुन लो जगराता ऐसा कहाँ जपन होता था।
कोमल शब्द नमस्ते कहते, ऐसा मधुर मिलन होता था।।

राम मन्दिर के निर्माण की चर्चा करनेवालों के मुख से एक बार भी यज्ञ-हवन की, वेद ऋचाओं की, सन्ध्या की, ईशोपासना की, यज्ञशाला की चर्चा किसी ने नहीं सुनी। ऊँची-ऊँची मूर्तियों, गगनचुम्बी भवनों के निर्माण की योजनायें ही सुन रहे हैं।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, '**वेदानां सामवेदोऽस्मि।**' इस कथन का कौन स्मरण करता है? संघ का कभी एक गीत सुना था-

निज गौरव को, निज वैभव को क्यों हिन्दू बहादुर भूल गये?
क्यों रास रचाना याद रहा? क्यों चक्र चलाना भूल गये?

प्रधानमन्त्री ने सीमा पर सुदर्शनचक्रधारी श्रीकृष्ण का स्मरण किया तो अच्छा लगा। वंशीवाले श्रीकृष्ण का भी उल्लेख किया। महाभारत इतिहासग्रन्थ है। भले ही प्रक्षेप इसमें हुआ पर इसमें वंशी बजाने की तथा वंशी की कहाँ-कहाँ चर्चा है? कोई वंशीवाले की महाभारत से ऐसी घटना क्या बतायेगा?

अब हमें क्यों याद करते?- हमने कभी जातिरक्षक, जातिसेवक श्री 'रब्बे कादियाँ' जी के एक भाषण में यह पद्य सुना था-

मिलके रहना जिन्दगी में हिन्दुओं का काम क्या?
हाँ मगर मिल बैठते हैं लम्हा भर श्मशान में।

न्यायालयों में राम जन्मभूमि का अभियोग चल रहा था तो राम जन्मभूमि का केस लड़नेवालों ने इस सेवक को, श्री पं. शिवराज मौलवी फ़ाजिल आदि इस्लामी साहित्य व इतिहास के मर्मज्ञ कई आर्य विद्वानों से बार-बार सम्पर्क करके अपने पक्ष के दुर्लभ प्रमाण माँगे। प्रयाग के हाईकार्ट में अन्तिम सुनवाई के समय रात्रि दस बजे लखनऊ से चलभाप से बात करने के लिये हमें नींद से जगाकर कहा गया, ''अन्तिम पेशी पर अन्तिम निर्णय से पहले राम जन्मभूमि के पक्ष में कोई दुर्लभ अकाट्य प्रमाण दो?'' हमने कहा, आप लखनऊ में हैं, ''हम अबोहर में हैं। रात का समय है। प्रमाण पहुँचाऊँ कैसे?''

वहाँ से कहा गया, ''कोई ऐसा स्रोत बताओ जो यहाँ से भी मिल सके।'' तब ईश्वर कृपा से हमें एक प्रमाण

सूझ गया। हमने कहा, लखनऊ गोमतीनगर में हमारे एक घनिष्ठ स्वाध्यायप्रेमी मिश्रा जी रहते हैं। उनके पास उर्दू से हिन्दी में की गई एक ऐसी दुर्लभ हमारे द्वारा ही सम्पादित पुस्तक 'भारत दर्पण' है। इसे कभी मुसलमानों ने दिल्ली से छापा था। उस मुसलमान प्रकाशक की भूमिका भी हमने यथापूर्व दी है। यह पुस्तक हिन्दू वकीलों को सौभाग्य से रात्रि समय मान्य मिश्रा जी से प्राप्त हो गई।

दोबारा फिर हमें जगाया। ''इसमें रामजन्म के पक्ष में प्रमाण किस पृष्ठ पर कहाँ मिलेगा?'' हमने चलभाष पर उन्हें बताया, ''पुस्तक कालक्रम से है। श्रीराम का वर्णन जहाँ आयेगा, वहाँ हमारी पादटिप्पणी भी दी हुई है। निकाल कर पढ़ो।'' उनको वह प्रसंग मिल गया। यह अलभ्य पुस्तक बठिण्डा के साहित्यप्रेमी स्वाध्यायप्रेमी प्रसिद्ध आर्यवकील श्री जितेन्द्र गुप्ताजी की प्रेरणा व पुरुषार्थ से हमने छपवा दी। अन्तिम सुनवाई में काम आ गई। यह प्रसंग तभी परोपकारी में हमने 'तड़प झड़प' में दे दिया था। अब मन्दिर के निर्माण में इसको-उसको बुलाया जा रहा है। श्री शरद पवार से नोक-झोंक भी हो गई है। जहाँ वेद नहीं, रामचन्द्र जी का यज्ञ हवन तक नहीं। वहाँ हमने क्या जाना था? अब किसी ने हमें क्या पूछना था? न चलभाष और न निमन्त्रण-पत्र। हिन्दू जोड़ना नहीं जानता। फेंकना, तिरस्कृत करना ही जानता है। हमारी सेवा व सहयोग का अब इनके लिये क्या महत्त्व है?

श्रीराम पर राम जेठमलानी ने प्रहार किया तो इन प्रमुख रामभक्तों ने भी उसके स्वर में स्वर मिलाया तो उत्तर हमारे प्रकाण्ड विद्वान् डॉ. धर्मवीर जी ने दिया था। तब आचार्य धर्मेन्द्र जी की कोटि के हिन्दू महात्मा व नेता तथा कई अन्यों ने हम पर दबाव डाला था कि आप धर्मवीर जी से श्रीराम पर एक बड़ी और मौलिक पुस्तक लिखवा दें। छप भी जावेगी। धर्मवीर जी ही ऐसी पुस्तक दे सकते हैं। धर्मवीर जी की धुन व व्यस्तताओं से यह कार्य सिरे न चढ़ सका। आज कौन कृतज्ञता से उन्हें स्मरण करता है। सबको बस लीडरी व पुजापा दिखाई देता है। चलो! **जब तक श्वास में श्वास है, वेद-रक्षा ही हमारा जीवन-मरण है।**

आर्यसमाज के इतिहास की एक लुप्त गुप्त कड़ी- आर्यसमाज के इतिहास की एक लुप्त-गुप्त कड़ी की खोज करके हम उसे प्रकाश में ला चुके हैं। उसके ऐतिहासिक महत्त्व पर भी खुलकर प्रकाश डाला है। इस सामग्री के बिना आर्यसमाज का इतिहास भी अधूरा है और ऋषि-जीवन भी एकदम अधूरा है। दुर्भाग्य से आर्यसमाज का प्रेस अब दम तोड़ चुका है। आर्यसमाज के विद्वान् तथा लेखक वैचारिक आन्दोलन के लिये अब किसी मौलिक जानकारी को, खोज को और हलचल पैदा करने वाली सामग्री को मुखरित ही नहीं करते।

हमने ऋषि के 'अपूर्व पत्र-व्यवहार' का सम्पादन करते हुये पृष्ठ १४७-१५० पर तथा अपने प्राक्कथन के पृष्ठ १८ पर अजमेर के श्री मुन्नालाल के २५ सितम्बर सन् १८८३ के एक पत्र का उल्लेख किया है। इसमें ऋषि जी को जोधपुर को अविलम्ब छोड़ देने का अनुरोध किया गया था। पत्र के पहुँचते-पहुँचते ऋषि जी को विष दे दिया गया। यह पत्र केवल महात्मा मुंशीराम जी के संग्रह में छपा मिलता है जिसे हमने सम्पादित किया है। पूज्य पं. भगवद्दत्त जी, श्रद्धेय मीमांसक जी तथा डॉ. वेदपाल जी द्वारा सम्पादित पत्र-व्यवहार में यह अद्भुत पत्र है ही नहीं।

इस पत्र को मुखरित यदि किया गया होता तो जोधपुर की राजनीति, प्रतापसिंह की महिमा की सब पोल खुल जाती। फिर नन्ही वेश्या का गुणकीर्तन करते हुये उसे वेश्या न होने का कोई प्रमाणपत्र न दे सकता और न जसवन्त सिंह को वेश्यागामी होने के पाप से बचाने की कोई वकालत कर पाता। इसमें कुछ दोष हमारा भी है जो लम्बे समय तक इसका सम्पादन व प्रकाशन हम टालते ही गये।

यह तो इतिहास पुरुष आर्यप्रकाशक ला. गोविन्दराम जी की दूरदृष्टि और धर्मभाव की अग्नि थी जो हमें आग्रहपूर्वक हमारी उठती जवानी में इस ग्रन्थ पर कार्य करने की प्रबल प्रेरणा दी। अब उन्हीं के पौत्र श्रीयुत अजय आर्य को इस ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आर्यजाति का रोम-रोम महात्मा मुंशीराम जी तथा ला. गोविन्दराम का इस उपकार के लिये ऋणी रहेगा।

इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक महत्त्व की और दुर्लभ सामग्री क्या है, यह हम अगली किसी लेखमाला में बतायेंगे। एक और तथ्य का अनावरण कर दें कि यह ग्रन्थ परोपकारिणी

सभा के कहने पर महात्मा मुंशीराम जी ने दिन-रात एक करके तैयार तो कर दिया, परन्तु सभा इसे छपवा न सकी। कोई कारण विशेष ही होगा जो इसे छपवाने का सभा पुण्य न लूट सकी। हमारी हड़कम्प मचाने वाली लेखमाला की उत्सुकता से प्रतीक्षा कीजिये। कई रहस्यों पर से परदा उठेगा।

'हैदराबाद के आर्यों की साधना और संघर्ष'- श्री पं. नरेन्द्र जी लिखित यह मौलिक और पठनीय पुस्तक लगभग अर्द्ध शताब्दी पूर्व प्रकाशित हुई थी। इसका मूल्याङ्कन इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् ही कर सकते हैं। सुना है कि इसका नया संस्करण आने वाला है। हमसे पूछा गया कि इसमें कुछ ऐसी सामग्री है जिसका आपके साहित्य में भिन्न प्रकार से वर्णन है। इसका कारण? ठीक कौनसा वृत्तान्त है? हमने उत्तर दिया कि पं. नरेन्द्र जी लिखित उनकी भूमिका 'पहली बात' ध्यान से पढ़िये इस प्रश्न का उत्तर मिल जावेगा।

निज़ाम के राज में आर्यों पर और आर्यसमाज के बड़े-बड़े पुस्तकालयों व मन्दिरों पर छापे (Raid) पड़ते ही रहते थे, सो पुस्तकालय और दस्तावेज़ (Documents) इधर-उधर कर दिये गये। ग्रन्थ-लेखक को पुस्तक लिखते समय कोई दस्तावेज़ न मिल सका। सब कुछ स्मरणशक्ति के आधार पर लिखा गया। चूक का होना स्वाभाविक था। पण्डित जी की व्यस्तताओं को आज का पाठक क्या जाने? उन्होंने यह उत्तम पुस्तक लिखकर भारी उपकार किया है।

जब आर्यजगत् सोया पड़ा था तब हमने देशभर में घूम-घूमकर दस्तावेज़ संग्रहीत कर सुरक्षित किये। शोलापुर से निकलने वाले हिन्दी उर्दू साप्ताहिक पत्रों की फाइलें कहाँ किसके पास हैं? पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री इनके सम्पादक थे। ये हैदराबाद सभा के पत्र थे। हमारे पास तो सब कुछ है। कुशलदेवजी ने भी कुछ हिम्मत करके दिखा दी। मसावात, झण्डा आदि उर्दू पत्र जो मुम्बई से छपते थे, उनके पठनीय अंक पं. नरेन्द्र जी ने देखे तक नहीं थे। कारण? वह तब मनानूर में बन्दी थे। हर्षवर्धन को उन उर्दू पत्रों के छायाचित्र हमने दे दिये। पण्डित जी के प्यारे 'वैदिक आदर्श' उर्दू का भी कोई अंक पण्डित जी को न मिल सका। आर्यजीवन उर्दू-हिन्दी के अंक अब कहाँ हैं? बस इतना ही संकेत पर्याप्त है।

हाँ! अगले संस्करण में प्रकाशक अथवा धर्मप्रेमी चाहेंगे तो हम इसका सम्पादन करके इस वैदिक सम्पदा को निखारकर पं. नरेन्द्र जी के प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति दिखा देंगे। अब हम कब तक यह ऋण चुका सकेंगे यह ईश्वरेच्छा कौन जाने?

एक आनन्ददायक समाचार- आर्यसमाज के युवा लगनशील लेखक और इतिहास के गवेषक श्री राजेश आर्य जी आठ वर्षों से रुग्ण चले आ रहे थे। उनकी रुग्णता हमारे लिये अत्यन्त कष्टप्रद थी। हमने उन्हें समझाया कि आप श्रीयुत अभय आर्य के मान्य पिताजी से विचार-विमर्श कर अपनी चिकित्सा करें। वह अब स्वाध्याय में डूबे रहते हैं, परन्तु आयुर्वेदमर्मज्ञ होने से रोगियों को निःशुल्क परामर्श देते हैं। अभय जी ने भी गुरुमुख (पिताजी से) आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यह आनन्ददायक शुभ समाचार है कि श्री राजेश आर्य के स्वास्थ्य में पर्याप्त सुधार हो चुका है। अब चिन्ता की कोई बात नहीं। आर्यजाति को अपने इस सपूत की सेवाओं का पूरा-पूरा लाभ मिलेगा।

योगमार्ग से भोगमार्ग- देवियों के अपहरण, बलात्कार, सामूहिक बलात्कार के गन्दे समाचार पढ़-सुनकर तो भले जनों का मन दुखता ही है। बीच-बीच में धर्मगुरुओं- बाबों द्वारा चेलियों से विवाह रचाने के लम्बे-लम्बे अभियोग और समाचार दूरदर्शन पर देखकर किस सज्जन का हृदय रोता नहीं होगा। ऐसा भी सुनने को मिला कि कई एक ने संन्यास लेने का अपना निश्चय ही बदल लिया। एक केन्द्रीय मन्त्री रहे बाबा जी आसाराम बापू के पीछे-पीछे कारावास जा पहुँचे। कहाँ संन्यास और वनवास और कहाँ कारावास!

ऐसा क्यों हो रहा है? मनुष्य सत्य से असत्य की ओर तथा योग से भोग की ओर सरपट दौड़ रहा है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने मर्यादा की बाड़ लगाकर जीवन बिताने का जो उदाहरण रखा उसका पालन कितने योगी व योगाचार्य करते हैं? ऋषि जी ने बड़ौदा की राजमाता को मिलने का समय न देकर एक मर्यादा स्थापित की। योग एकान्त चिन्तन और सामूहिक सन्ध्या वन्दन न होकर भीड़तन्त्र बनने व बनाने का ही परिणाम है जो नित्यप्रति बाबों के गृहस्थी बनने के समाचार सबको निराश कर रहे हैं। परमात्मा सबको सुमति दें।

वाममार्ग का उद्भव, स्वरूप और विकास

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)

श्री क्षितीश वेदालङ्कार

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

वाममार्ग का उद्भव जिन तन्त्रग्रन्थों से हुआ उनके पठन-पाठन की परम्परा अब प्रायः विद्वानों में भी नहीं रही। उसके कारण अनेक हो सकते हैं, किन्तु उनके बिना वाममार्ग के स्वरूप पर उचित प्रकाश भी नहीं पड़ सकता। स्वाध्यायशील लेखक ने इस दुरूह विषय पर अद्भुत रूप से प्रकाश डाला है जिससे अनेक गुत्थियाँ सुलझती दृष्टिगोचर होंगी। -सम्पादक

सांख्यदर्शन का सूत्र है- **उपदेश्योपदेष्ट्टत्वात् तत्सिद्धिः।इतरथान्धपरम्परा।।** [अ. ३ । सूत्र ७९ ।] अर्थात् जब उत्तम उपदेशक होते हैं तब उनके उपदेश से जनता में धर्म और सदाचार के मूल्यों की यथावत् स्थापना रहती है और लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि की ओर, बिना एक-दूसरे का अतिक्रमण किये अग्रसर रहते हैं, किन्तु जब उत्तम उपदेशक या उनके उपदेश पर आचरण करने वाले नहीं रहते तब जनता में अन्धपरम्परा चल पड़ती है। जो जिसके जी में आये करने लग जाता है और वह अपने आचरण को ही प्रमाण मानकर उसे धर्मानुमोदित सिद्ध करने में ही अपनी बुद्धि का प्रयोग करने लगता है।

कालक्रम से जब वेदों का पठन-पाठन लुप्त हो गया, स्वाध्याय के प्रति ब्राह्मणों की रुचि नहीं रही, तब वे स्वयं भी विद्या-विहीन हो गए और उनके यजमान भी। पहले ब्राह्मण अपनी विद्या और धर्माचरण के कारण जनता में पूजित थे, किन्तु जब ये दोनों बातें उनके जीवन में न रहीं तब ब्राह्मणकुल में जन्म के कारण ही वे अपने आपको श्रेष्ठ सिद्ध करने लगे। अपने आपको 'भूसुर' बताकर उन्होंने निज को पूजार्ह करार दिया और जातिवाद को प्रश्रय दिया। स्त्री, शूद्र तथा अन्य निम्न वर्ग के लोगों को उन्होंने विद्या का अनधिकारी घोषित किया। गुरु की महत्ता सिद्ध कर गुरु की सेवा को ही मोक्ष का परम साधन बताया। वेदों के नाम पर उन्होंने यज्ञों में पशुहिंसा आदि नितरां अवैदिक काम प्रारम्भ कर दिये। अपने आपको सब प्रकार के धर्म, कर्म से ऊपर बताकर मद्य-मांसादि का स्वच्छन्द सेवन प्रारम्भ कर दिया और प्राचीन ग्रन्थों में मद्य-मांस-समर्थक श्लोक प्रक्षिप्त कर दिये एवं स्वयं भी ऐसे अनेक नये ग्रन्थ लिखे जिनमें इनके सेवन को सदोष तो माना ही नहीं गया, प्रत्युत इनके सेवन को धर्म का अंग बताया गया। धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि वेदों की दृष्टि में जो अनाचार और अधर्म था वही आचार और धर्म बन गया। उन्होंने **'ब्राह्मणो न हन्तव्यः'** अर्थात् ब्राह्मण अवध्य है-इस बात की घोषणा करके अपने अनाचार के लिये अपने को दण्ड से भी मुक्त कर लिया। उन्होंने राजाओं को निश्चय करा दिया कि ब्राह्मण चाहे जो करे, उसे दण्ड देने की बात कभी मन में नहीं लानी चाहिये। (नेपाल के कानून में ब्राह्मण अभी तक अवध्य है।) उनका यथेष्टाचार बढ़ चला। उन्होंने दूसरों के लिये इतने कठोर नियम बनाये कि पुरोहित, गुरु या ब्राह्मण की आज्ञा के

बिना यजमान अपना नित्यकर्म भी नहीं कर सकता था। वे अपने चरणों की और अपनी पूजा कराने लगे और लोगों को बताने लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर उन्होंने भेड़चाल की तरह गुरु-शिष्य परम्परा चलाई। धीरे-धीरे राष्ट्र में से बल, विद्या, बुद्धि और पराक्रम के शुभ गुण नष्ट होते गये।

आरम्भ काल

यद्यपि यह प्रवृत्ति महाभारतकाल से कुछ पूर्व ही देश में प्रारम्भ हो गई थी, किन्तु महाभारत के पश्चात्, खासकर महात्मा बुद्ध के पश्चात, तो यह प्रवृत्ति बाढ़ की तरह बढ़ चली। उसी युग में श्राद्ध, मूर्तिपूजा, यज्ञों में पशुहिंसा और मूर्तियों पर बलि, अनेक देवता, अपने इष्ट देवता के नाम से अलग सम्प्रदाय, प्राचीन ग्रन्थों में मिलावट, आगम-निगम-संहिता और तन्त्रग्रन्थों की रचना एवं अष्टादश पुराणों का निर्माण हुआ। बौद्धधर्म के विभिन्न 'यान' नामक सम्प्रदायों (जिनमें ये चार मुख्य थे-हीनयान, महायान, वज्रयान और सहजयान) और हिन्दुओं के वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के सम्मिश्रण से उस युग में एक नये मत का प्रचलन हुआ, जिसे वाममार्ग या वामाचार नाम दिया गया।

बुद्ध के एक सहस्र वर्ष पश्चात् नाना सम्प्रदायों में विभक्त होकर बौद्धमत इतना जीर्ण-शीर्ण व्यामिश्रित और अनाचार-प्रधान हो गया कि बुद्ध ने जिस आचार पर सर्वाधिक बल दिया था वही आचार उसमें कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था। हिन्दुओं में भी उस समय जो नाना सम्प्रदाय उभरे वे बौद्धों की उसी अनाचार, प्रधानता से प्रभावित थे। परवर्ती बौद्धधर्म और विभिन्न तान्त्रिक मतों में आचार और दर्शन की इतनी अधिक समानता है कि उनमें भेदक रेखा खींचना कठिन है। जिस देश में बौद्धधर्म ने जन्म लिया उसी देश में वह नामशेष हो गया-इतिहास की इस अघटनीय घटना की व्याख्या भी यही है कि जब हिन्दू तान्त्रिक मतों में और बौद्ध सम्प्रदायों में कोई भेद न रहा, तब बौद्धों के अलग अस्तित्व की भी आवश्यकता न रही। वास्तव में कहना चाहिये कि दोनों ही समान रूप से अनाचार के समुद्र में डूब गये। वर्तमान में जो तथाकथित विशाल हिन्दू समाज का पारावार है, वह वही अनाचार का समुद्र है, जिसमें हिन्दू और बौद्ध तान्त्रिकों की मनमानी रूढ़ियों की कुनदियाँ आकर गिरती हैं। इसी अनाचार के समुद्र को ऋषि दयानन्द ने आचार के पारावार में परिवर्तित करने के लिये आर्यसमाज को जन्म दिया था।

महाभारत में तन्त्रग्रन्थों को धार्मिक ग्रन्थों के रूप में कहीं स्मरण नहीं किया गया। अलबत्ता पुराणों में उनकी चर्चा है। इससे भी पुराणों के साथ उनकी समकालीनता और महाभारत से अर्वाचीनता सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, बुद्ध के लगभग १,००० वर्ष पश्चात् भी पुराणों का या तन्त्र-ग्रन्थों का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उसके बाद के एक हजार साल में तो जैसे इनका ही बोलबाला बना रहा और १२ वीं सदी तक वे ही सर्वत्र छाये रहे।

अश्लील मूर्तियाँ क्यों?

जगन्नाथपुरी, भुवनेश्वर, खजुराहो और द्वारिकापुरी आदि मन्दिरों की दीवारों पर जितनी अश्लील मूर्तियाँ पाई जाती हैं उनका औचित्य सिद्ध करने के लिये बताया जाता है कि मन्दिर पर बिजली न गिरे, इसलिए ये अश्लील मूर्तियाँ बनाई गई हैं, क्योंकि विद्युत कुमारी कन्या है, वह इन मिथुन मूर्तियों को देखकर संकोच के कारण उनकी तरफ आँख नहीं उठाएगी। किन्तु उसी काल के बने नेपाल के बौद्ध मन्दिरों में ये अश्लील मूर्तियाँ नहीं हैं, प्रत्युत दीवारों पर सर्वत्र ध्यानमग्न बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। जब एक पौराणिक पण्डित से मैंने अपनी नेपाल-यात्रा में इस विपर्यास का कारण पूछा, तब उसने कुछ गर्व के साथ कहा कि "हिन्दुओं के मन्दिरों में अश्लील मूर्तियाँ यह दिखाने के लिये हैं कि हिन्दू साधक इस प्रकार की कामोत्तेजक मूर्तियों से भी विचलित नहीं होता और मन्दिर में जाकर अपने इष्ट देवता की आराधना में लीन हो जाता है, इस प्रकार वह बौद्ध साधक से श्रेष्ठ है। बौद्धों से हिन्दुओं की साधना की श्रेष्ठता बताने के लिए ही अश्लील मूर्तियाँ बनाई गई हैं।" परन्तु वस्तुस्थिति भिन्न है। आज के युग में, उन मूर्तियों का औचित्य यूरोप की सी नग्न कलाप्रियता के नाम पर किया जाये तो किया जाय, धर्म के नाम पर कदापि नहीं किया जा सकता। वास्तविकता यह है कि इस प्रकार के जितने भी मन्दिर हैं उनमें से एक हजार साल से

अधिक पुराना एक भी नहीं है। ये सब मूर्तियाँ उस युग की देन हैं जब अश्लीलता धर्म का अंग मानी जाती थी। वह वाममार्ग का युग था। वाममार्ग के उस युग में ही मूर्तियों की षोडशोपचार पूजा, देवदासियों की प्रथा, अवतारवाद, राधा और कृष्ण की प्रेमलीला, अष्टधाभक्ति, नाम संकीर्तन आदि की अवैदिक और पौराणिक कल्पनाओं का विकास हुआ, उनको धर्म का अंग माना गया और आज भी पौराणिक धर्म में उन्हीं का प्राबल्य है।

वाममार्ग नाम क्यों?

वाममार्ग को वाम मार्ग इसलिये तो कहा ही गया कि वह उल्टा रास्ता था, किन्तु उसे वाममार्ग या वामाचार इसलिए भी कहा गया कि इसमें वामा अर्थात् स्त्री का महत्त्व था। इसमें स्त्री को शक्ति का प्रतीक माना गया। शक्ति अर्थात् आद्याशक्ति, आद्याशक्ति अर्थात् जगज्जननी। 'शक्ति' केवल वैयाकरण को दृष्टि से ही स्त्रीलिंगी नहीं है, किन्तु उसमें मानव मन की यह अनुभूति भी समाविष्ट है कि जैसे माता के पेट से शिशु जन्म लेता है, उसी प्रकार समस्त सृष्टि का अभ्युदय जगज्जननी के पेट से होता है। उस शक्ति को समस्त देवताओं की आराध्या माना गया। उसी शक्ति में जगतरचयिता ब्रह्मा का, जगत्पालयिता विष्णु का और जगत्- संहर्ता महाकाल का आवास माना गया। वह शक्ति ही जगत्-कारिका, जगत्-पालयित्री और महाकाल की स्वामिनी-उसके शव पर नृत्य करने वाली-सब देवताओं की अधिष्ठात्री मानी गई। एक ओर उमा, पार्वती, काली, दुर्गा, चण्डी और दूसरी ओर लक्ष्मी और राधा को उसी शक्ति का प्रतिरूप समझा गया। इतना ही नहीं, स्त्री मात्र को उस शक्ति का प्रतिरूप मान कर उसकी पूजा का विधान किया गया। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टि से स्त्री पात्र में मातृ-बुद्धि करने से मानव मन में उदात्त भावनाओं की सृष्टि हो सकती थी, किन्तु उसके साथ जो पञ्च मकार की साधना रखी गई उसके कारण व्यवहार में वह मन की निम्नतम वृत्तियों को ही उद्बुद्ध करने में चरितार्थ हुई।

तान्त्रिक मतों का उदय

तान्त्रिक मत को वाममार्ग का पर्यायवाची समझना चाहिये। जिन ग्रन्थों में पार्वती शिष्य बनकर प्रश्न करती है और महादेव या भैरव गुरु बनकर प्रश्नों के उत्तर देते हैं, वे आगम कहलाते हैं। जिन ग्रन्थों में महादेव शिष्य बनकर प्रश्न करते हैं और पार्वती गुरु बनकर उत्तर देती है, वे निगम कहलाते हैं। शैवों के इन आगम और निगमों की संख्या सैकड़ों में है। यद्यपि तन्त्रों में शैवों के आगम और निगम दोनों शामिल किये जाते हैं, किन्तु ख़ास तौर से शाक्तों के धर्मग्रन्थ ही तन्त्र शब्द से अभिहित होते हैं। इस तरह शाक्तमत का अध्ययन करने से ही वाममार्ग का असली स्वरूप सामने आ सकता है। परन्तु ये तन्त्र-ग्रन्थ संख्या में विपुल होने पर भी अधिकांश अप्रकाशित हैं। बहुत से तन्त्र ग्रन्थ नेपाल और तिब्बत में ही प्राप्य हैं। (स्व. श्री राहुल सांकृत्या-यन मूल या अनूदित रूप में काफी तन्त्र-ग्रन्थों का तिब्बत से उद्धार करके लाये थे। वे भी अभी तक अप्रकाशित हैं और पटना म्यूज़ियम में सुरक्षित हैं।) इन मतों के अनुयायी अपने ग्रन्थ किसी अन्य मतावलम्बी को तो दिखाते ही नहीं, किन्तु अपने मतावलम्बी को भी तब तक नहीं दिखाते जब तक इनके गुह्य समाज के दीक्षित चक्र में शामिल होकर वह अपनी दृढ़ अनुरक्ति सिद्ध नहीं कर देता। 'गुह्यसमाज तन्त्र' में तो यहाँ तक लिखा है कि यदि कोई अनधिकारी व्यक्ति उस ग्रन्थ का दर्शन कर ले तो दर्शन करनेवाला और दर्शन करवानेवाला दोनों नरक में जाते हैं। अपनी इस गुह्यता को बनाए रखने के लिये ही ये लोग अपने मन्दिर पर्वत-शिखरों पर या सघन वनों में बनाते हैं ताकि इनके दीक्षित-चक्र की साधना निर्विघ्न रूप से चलती रहे। कहीं-कहीं ये मन्दिर भूगर्भ में या गुफाओं में मिलते हैं। मन्दिरों में अन्धकाराच्छन्न गर्भग्रहों की व्यवस्था भी कदाचित् इसी कारण की गई थी। इस प्रकार के अनाचार को देखकर कुपित होने वाले जन-सामान्य के कोप की आशंका से बचने के लिये भी ये अपने साधना-केन्द्र ऐसे स्थानों पर रखते हैं जहाँ दिन में तो अन्य लोग भले ही पहुँच जाएँ, किन्तु रात में कोई पहुँचने का साहस नहीं करता। (उदाहरण के लिए गुवाहाटी के कामाख्या मन्दिर और जम्मू के वैष्णवदेवी तीर्थ का नाम लिया जा सकता है।)

कुछ तन्त्र में तन्त्र संख्या ६४ बताई जाती है। कहीं-कहीं ऐसा भी उल्लेख है कि विश्व के तीन विभिन्न भागों

में ६४, ६४ तन्त्र मिलते हैं। किन्तु हस्तलिखित प्रतियों के रूप में भी उपलब्ध तन्त्रों की संख्या इससे कहीं अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि तन्त्रों की मूलभूमि बंगाल रही है। वहीं से असम, नेफा, नेपाल में और फिर उससे भी परे तिब्बत और चीन में बौद्ध धर्म के माध्यम से उनका प्रचार हुआ है। सामान्यत: तन्त्रों की रचना शिव-पार्वती के संवाद के रूप में ही हुई है। शाक्त मत की उदात्त और निम्न वृत्तियाँ आज के बंगाल में भी देखी जा सकती हैं। जिस धूमधाम से दुर्गा-पूजा वहाँ मनाई जाती है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं। शाक्त मत का उत्कृष्ट रूप रामकृष्ण मिशन के रूप में प्रस्फुरित हुआ और निकृष्ट रूप आज भी काली के मन्दिर में बकरों की बलि चढ़ाने की परम्परा में दृष्टिगोचर होता है। अद्वैत का उपासक रामकृष्ण मिशन भी शाक्तमत की ही देन है, यह बात कदाचित् कुछ लोगों को अटपटी प्रतीत हो, परन्तु हम यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन कर रहे हैं। यद्यपि रामकृष्ण मिशन का अद्वैत इस समय शांकर अद्वैत से प्रभावित है, परन्तु रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक प्रेरणा का स्रोत जगज्जननी के रूप में प्रतिष्ठित शाक्तों का शक्ति तत्त्व ही है, यह निर्विवाद है। एक दृष्टि से तान्त्रिक लोग भी अद्वैत के उपासक हैं- इसका विवेचन हम आगे करेंगे जब वाममार्ग के दार्शनिक पक्ष पर विचार का प्रसंग आएगा।

पाँच मकार

वाममार्गियों ने जिन पाँच मकारों को सृष्टि का नियात्मक तत्त्व स्वीकार करके उनकी आराधना को चरम लक्ष्य माना है, वे पाँच मकार हैं (१) मद्य, (२) मांस, (३) मीन, (४) मुद्रा, और (५) मैथुन। मद्य ऐसी परमौषधि मानी गई है, जो व्यक्ति को संसारिक सुख-दु:ख से परे पहुँचा देती है। मांस से अभिप्राय है ग्राम्य, वायव्य तथा वन्य पशुओं का मांस जिसे बल का स्रोत माना गया है। मीन अर्थात् मछली जिसे स्वादु तथा बुद्धिवर्धक और वीर्यवर्धक माना गया है। मुद्रा का अर्थ है भुना हुआ या पकाया हुआ या तला हुआ अन्न-जैसे मुरमुरे (बंगाल और बिहार में जिसे 'लाई' कहते हैं), पूरी-कचौरी, बड़े-पकौड़ी या मिष्टान्न। हाथों से की जाने वाली विभिन्न मुद्राओं की ओर भी मुद्रा शब्द का संकेत है। ह्रीं, क्लीं, फट् आदि बीजाक्षरी मन्त्रों का जाप करते हुए जो तरह-तरह की हस्तमुद्राएँ की जाती हैं- वे इस शब्द से अभिप्रेत हैं। परवर्ती नृत्यशास्त्र का विकास भी मुद्रा के आधार पर ही हुआ है। आधुनिक भारत में प्रचलित कथकली और भरतनाट्यम आदि नृत्यशैलियों में हस्तमुद्रा और मुखमुद्रा के इस विकास का अध्ययन किया जा सकता है।

मुद्रा का अर्थ

परन्तु वाममार्गियों के विधान में मुद्रा शब्द का एक विशेष अभिप्राय भी है जो अन्य किसी शास्त्र द्वारा समझ में नहीं आ सकता। मुद्रा का अर्थ है पात्राधार या स्त्रीन्द्रिय योनि, या वह योगिनी साधिका स्त्री जिसके बिना तान्त्रिक साधक दीक्षितचक्र में प्रवेश नहीं पा सकता। किसी भी तान्त्रिक के लिये गुरु के पास दीक्षार्थ जाने से पूर्व यह आवश्यक है कि वह अपने साथ एक साधिका को भी अवश्य ले जाये-फिर वह चाहे उसकी पत्नी हो, या कन्या हो, या अन्य कोई भी स्त्री हो। वह स्त्री ही मुद्रा है। वज्रयानी उसे वज्रकन्या या वज्रधारिणी कहते हैं। शिष्य और शिष्या के रूप में साधक और साधिका पहले गुरु की सेवा करके उसे प्रसन्न करते हैं, जब गुरु प्रसन्न हो जाता है, तब वह इन दोनों का 'अभिषेक' करता है। अभिषेक यहाँ पारिभाषिक शब्द है। यह अभिषेक भी कई प्रकार का होता है। सामान्यतया इस अभिषेक का अर्थ वीर्य-सिंचन समझा जा सकता है। इस अभिषेक के बाद ही शिष्य और शिष्या दीक्षितचक्र में शामिल समझे जाते हैं। (साधक-साधिका की इस सदैव अनिवार्यता की झलक रविबाबू की इस कविता-पंक्ति में भी दिखाई देती है- ''न हूँगा न हूँगा मैं तापस, यदि न मिली तपस्विनी'')।

मैथुन का अर्थ है भैरव और भैरवी का-शिव और पार्वती का-स्त्री और पुरुष का-संभोग, क्योंकि दीक्षितचक्र में उपस्थित सब स्त्री पुरुष 'अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु संगम:' की प्रतिज्ञा को चरितार्थ करने के लिये ही उपस्थित होते हैं? प्रत्येक पुरुष भैरव माना जाता है और प्रत्येक स्त्री भैरवी।

इस मैथुन को जीवन के परमानन्द का स्रोत माना जाता है। प्रकृति और पुरुष के संयोग को कभी 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया था, किन्तु तान्त्रिकों ने उस उपमा के

काव्यत्व को भूलकर आध्यात्मिक अनुभूति को भी विशुद्ध भौतिक धरातल पर उतार लिया और अपने कामाचार को खुली छूट देने के लिए मैथुन को ही परमानन्द की संज्ञा दे डाली। इन पञ्च मकारों को काली तन्त्र में "एते पञ्च मकाराः स्युः मोक्षदा हि युगे युगे" कहकर प्रत्येक युग में मोक्ष का परम साधन बताया गया।

चाहे कोई पुरुष हो चाहे कोई स्त्री हो, वाममार्गी उनके समागम में दोष नहीं मानते। कुलार्णवतन्त्र में तो डंके की चोट कहा गया है कि "मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु"-अर्थात अपनी माता को छोड़कर शेष स्त्रियों से समागम किया जा सकता है। और तो और, शास्त्रों में रजस्वला आदि के स्पर्श का निषेध किया है किन्तु वाममार्गियों ने उनको भी अति पवित्र माना है। उनके एक अण्ड-कण्ड श्लोक में कहा गया है कि रजस्वला के साथ समागम पुष्करतीर्थ में स्नान के समान, चाण्डाली से समागम काशीयात्रा के समान चमारी से समागम प्रयाग-स्नान के समान, रजक-दुहिता से समागम मथुरा-यात्रा के समान और कंजरी के साथ काम-क्रीड़ा अयोध्यावास के समान है। अन्य लोगों से अपनी परिभाषाओं को गुप्त रखने के लिये इन लोगों ने मद्य का नाम रखा 'तीर्थ', मांस का नाम रखा 'शुद्धि' या 'पुष्प' (मांसाहारी पंजाबियों में मांस को 'परसादा' या 'प्रसाद' कहने की प्रथा के साथ इसकी तुलना कीजिये) मीन का नाम रखा 'ततीया' या 'जलतुरम्बिका' (बंगाल में मछली को 'जलतुरई' कहने का आम रिवाज है), मुद्रा का नाम रखा 'चतुर्थी' और मैथुन का नाम रखा 'पंचमी'। जो लोग वामाचार को नहीं मानते उन्हें ये लोग 'कण्टक' 'विमुख' या 'शुष्कपशु' आदि शब्दों से सम्बोधित करते हैं। ये मानते हैं कि भैरवीचक्र में उपस्थित ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त लोग द्विज होते हैं और भैरवी-चक्र से अलग हो जाने पर सब अपने-अपने वर्ण में पहुँच जाते हैं।

आधुनिक-भैरवी-चक्र

उड्डीस तन्त्र के अनुसार मद्यपान का एक आदर्श प्रयोग इस प्रकार है : घर में चारों ओर आले बने हों और हरेक आले में एक-एक बोतल शराब रखी हो। साधक एक आले वाली बोतल पीकर फिर दूसरे आले की ओर जाये, दूसरी बोतल खाली कर तीसरे आले की ओर, फिर चौथे आले की ओर, और इस प्रकार खड़ा-खड़ा तब तक मद्य पीता रहे जब तक लकड़ी के तख्ते के समान भूमि पर न गिर पड़े। जब नशा उतरे तो फिर उसी प्रकार पीना जारी रखे जब तक गिर न पड़े। जो इस प्रकार पीते-पीते तीसरी बार भूमि पर गिर पड़े उसका पुनर्जन्म नहीं होता-वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। सच तो यह है कि ऐसे मनुष्य को दुबारा मनुष्य योनि मिलने की कोई सम्भावना नहीं, वह मल-मूत्र की किसी गन्दी नाली का कुत्सित कीड़ा ही अगले जन्म में बन सकता है, मनुष्य नहीं।

भैरवी-चक्र में उपस्थित ये भैरव-भैरवी कभी-कभी अधिक नशे में लड़ भी पड़ते हैं-इनमें परस्पर लतियाव, जूतम पैजार, केशाकेशी और मुक्का-मुक्की और धर-पटक हो जाती है। किसी-किसी को वहीं कै भी हो जाती है। उनमें जो सबसे बड़ा सिद्ध माना जाता है, वह प्रायः पहुँचा हुआ अघोरी होता है और वह कै को भी खा जाता है। उसे विष्ठ-भक्षण और मूत्रपान तक से परहेज नहीं होता। इनमें सन्त शिरोमणि, सदाशिव और सबसे बड़ा जो सिद्ध माना जाता है उसका लक्षण यों किया गया है। "**हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु। विराजते कौलव चक्रवर्ती।**" इनको परिभाषा में 'कौल' शब्द का अर्थ है सन्त-उसी को ये कुलीन और अच्छे कुल में पैदा हुआ मानते है जो उनके वाममार्ग से दीक्षित होकर सिद्धावस्था तक पहुँच जाये। उन कौलों में चक्रवर्ती अर्थात् सर्वश्रेष्ठ है वह व्यक्ति जो लोक-लज्जा, शास्त्र-लज्जा और कुल-लज्जा को तिलांजलि देकर कलार के घर जाकर खूब शराब पीवे, वारांगनाओं के यहाँ जाकर निश्शंक होकर कुकर्म करे और रातभर वहीं सोवे। अर्थात् उनके यहाँ जो जितना कुकर्मी हो वहाँ वह उतना ही सिद्ध माना जाता है।

ऐतिहासिक पक्ष

भारतीय इतिहास में महात्मा बुद्ध का काल ऐसा सुनिश्चित है कि उसके बारे में आज तक कभी किसी विद्वान् ने विप्रतिपत्ति उपस्थित नहीं की। महात्मा बुद्ध का जन्म ५३५ ई. पू. में और उनकी मृत्यु ४८५ ई. पू. में हुई। जब तक महात्मा बुद्ध जीवित रहे, तब तक शास्ता के

स्वयं विद्यमान रहने के कारण जब किसी विषय में शङ्का होती तो शिष्यगण शास्ता की सेवा में उपस्थित होकर उन शङ्काओं का निवारण कर लेते, परन्तु बुद्ध के उपदेश कभी भी लिखे नहीं गये, इसलिए उनके महापरिनिर्वाण के पश्चात् बुद्ध के मन्तव्यों के विषय में सन्देह पैदा होने लगे। सन्देह से विवाद बढ़ा और उस विवाद के उपशमन के लिए उनके शिष्यों ने समय-समय पर पाँच संगीतियाँ (गायन, संरक्षण, उद्धरण और आवृत्ति की सभाएँ) आयोजित कीं। प्रथम संगीति में तो केवल बुद्ध के वचनों का ही संग्रह किया गया। किन्तु बाद में नवीन विचार तथा मतभेद पैदा हुए और वे मतभेद संगीतियों में भी वादविवाद के रूप में उभर कर सामने आने लगे। पीछे तो यह परम्परा बन गई कि कोई भी विवाद बौद्ध समाज में तब तक मान्यता प्राप्त नहीं करता था जब तक वह किसी संगीति में मान्य न हो जाए। प्रथम संगीति बुद्ध के अवसान के कुछ सप्ताह पश्चात् ही बुलानी पड़ी, जिसमें ५०० शिष्य उपस्थित हुए। फिर जब विनय और नैतिक नियमों का खुल्लम-खुल्ला विरोध प्रारम्भ हो गया तब सौ वर्ष के अन्दर-अन्दर दूसरी संगीति बुलानी पड़ी जिसमें दस सहस्र भिक्षु सम्मिलित हुए। इसी समय बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया- एक महासांघिक और दूसरा स्थविरवादी। बुद्ध के उपदेशों में जो किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विरोधी थे वे स्थविरवादी और जो परिवर्तन के पक्षपाती थे वे अधिक संख्या में होने कारण महासांघिक कहलाये। यही अपरिवर्तनवादी आगे जाकर हीनयान और परिवर्तनवादी महायान में रूपान्तरित हो गए। हीनयान आडम्बर के विरुद्ध था और धर्म की शुद्धता का पक्षपाती था, परन्तु महायान आडम्बर और समयानुसार परिवर्तन का पक्षपाती था। दोनों शब्दों के अर्थ से ही यह बात ध्वनित होती है-हीनयान अर्थात् छोटी सवारी अर्थात् निराडम्बर उपासना; महायान अर्थात् बड़ी सवारी अर्थात् विपुल आडम्बर के साथ शोभायात्रा निकालना, बड़े-बड़े मन्दिर और विशाल विहार तथा चैत्य बनवाना। बौद्धों का महायान ही मन्दिर और मूर्ति-प्रधान पौराणिक हिन्दूधर्म का पूर्व रूप है।

मूर्तिपूजा का श्रीगणेश

बुद्ध की सबसे पहली मूर्ति कदाचित् यूनानियों के सम्पर्क से गान्धार देश के लोगों ने बनाई थी। आज भी बुद्ध की प्राचीनतम मूर्तियाँ अफगानिस्तान और ईरान में ही पाई जाती हैं। अफगानों और ईरानियों ने बुद्ध को अपनी भाषा में 'बुत' कहा। यही बुत शब्द मूर्ति का पर्यायवाची है। बौद्धों की देखादेखी पीछे हिन्दुओं ने भी अपने अवतारों की कल्पना करके उनकी मूर्तियाँ और मन्दिर बनाने प्रारम्भ कर दिये। इस काल के पूर्व कहीं भी मन्दिर या मूर्ति का वर्णन नहीं मिलता। यह ईसवी सन् के आरम्भ की और कनिष्क के काल की बात है। कुषाण-सम्राट् कनिष्क बौद्धराजा था जिसका आधिपत्य ईरान और अफगानिस्तान तक फैला हुआ था।

तीसरी संगीति अशोक के समय २५१ ई. पू. में पाटलिपुत्र में बुलाई गई थी। सारनाथ और साँची की स्तम्भ लिपियों से ज्ञात होता है कि अनाचार-परायण भिक्षुओं को अशोक ने श्वेत वस्त्र पहनाकर निकाल देने का आदेश दिया था। ये सब हीनयान-विरोधी थे। इन निष्कासित भिक्षुओं ने राजगृह और नालन्दा के पास ही अपना अड्डा जमाया और बाद में नालन्दा विश्वविद्यालय इनका प्रमुख केन्द्र बना। पहले महासांघिक, फिर महायानी और उसके बाद वज्रयानी, ये सब बौद्ध धर्म के अवांछनीय लोग थे, परन्तु इनकी संख्या अल्प थी और वर्चस्व प्रचुर, इसलिए धीरे-धीरे ये ही बौद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व करने लगे और नालन्दा विश्वविद्यालय के माध्यम से उन्होंने अपने मत को दृढ़ दार्शनिक भित्ति प्रदान कर अपने विद्वानों द्वारा अपने मत का प्रचार किया। तिब्बत में बौद्ध धर्म के महायानी और वज्रयानी रूप का प्रचार करने वाले दीपंकर श्रीज्ञान और स्मृतिज्ञान कीर्ति इसी विश्वविद्यालय के आचार्य थे। दीपंकर श्रीज्ञान को ही तिब्बती लोग 'अतिशा' के नाम से पूजते हैं।

ईसवी सन् के आरम्भ में, कनिष्क के समय तक (७८ ई.) आते-आते महायान धर्म ने कला में बुद्ध के चरण, बोधिवृक्ष, रिक्त आसन और छत्र आदि के स्थान पर उनकी मूर्तियों को प्रश्रय दिया। महायान का पूर्ण प्रकाशित रूप कनिष्क के समय ही सामने आया और उसके लगभग ५०० वर्ष बाद तो वह पूर्ण प्रतिष्ठित हो गया। धीरे-धीरे

महायान की लोकप्रियता का असर हीनयान पर भी पड़ने लगा और वह भी उससे बिना प्रभावित हुए नहीं रह सका। हीनयान के अधिकांश ग्रन्थ पालि में हैं और महायान के ग्रन्थ मिश्र-संस्कृत में या शुद्ध संस्कृत में। महायान का मान्य ग्रन्थ 'ललितविस्तर'। इस ग्रन्थ के नाम से ही प्रकट है कि इसमें बुद्ध की लीला का ललित और सविस्तार वर्णन है। इसमें बुद्ध के जीवन को अलौकिक शक्ति की लीला के रूप में चित्रित किया गया है और बुद्ध के मुख को प्रभामण्डल से आलोकित बताया गया है। बाद में बुद्ध का यह अलौकिकत्व और मुख के चारों ओर का प्रभामण्डल पौराणिक अवतारों में ज्यों का त्यों उतर आया। महायान के ग्रन्थों में कहा गया था कि जो लोग बुद्ध मूर्ति या किसी प्रकार के स्तूप का निर्माण करते हैं, भित्तिचित्र खींचते हैं (जैसे अजन्ता और एलोरा में), स्तूपों पर पुष्पार्पण या सुगन्धि अर्पण करते हैं या उसके सामने गायन-वादन करते हैं या बुद्ध के प्रति अचानक भी आदर की भावना व्यक्त करते हैं, यहाँ तक कि जो बालक अनजाने या क्रीड़ा में भी बुद्ध के अंगों का आकार दीवार पर खींचते हैं, वे सब बोधि तक पहुँच जाते हैं। महायान की यह विचारधारा ही पौराणिक हिन्दू धर्म में भक्तिमार्ग की जननी है। महायानियों के साहित्य में जिस लोक में अभिताभ प्रतिष्ठित हैं उसे 'सुखावती व्यूह' नाम दिया गया है। इसी 'सुखावती व्यूह लोक' के आधार पर पुराणों और तन्त्रों में स्वर्ग और नरक की कल्पना अधिक प्रगल्भ रूप में सामने आई है।

महायान पर भी हिन्दू साहित्य, धर्म, दर्शन और साधना का कम प्रभाव नहीं पड़ा। इसी कारण कुछ लोग महायान को हिन्दू बौद्ध धर्म या हिन्दूधर्म को बौद्ध महायान का रूपान्तर कहते हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि महायान का मूल स्रोत श्रीमद्भगवद्गीता ही है। जो भी हो, यह निर्विवाद है कि हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के परस्पर सम्मिश्रण के बाद ईसा की पहली सहस्राब्दी में जो भावधारा भारतीय जनमानस में बह रही थी वह इसी प्रकार की थी। बाद में जब औपनिषदिक और पातंजल योग की सहायक नदियाँ भी इस धारा में मिल गईं, तब रहस्यात्मक साधनापद्धति का प्रचार हुआ। इसी रहस्यात्मक योगपद्धति ने आगे जाकर तान्त्रिक शिव और शक्तिसाधना के प्रारम्भिक रूप का काम किया।

'परावृत्ति' शब्द का अर्थ

इसी महायान से बौद्धों के दो और परवर्ती सम्प्रदाय निकले, जिनमें एक था वज्रयान और दूसरा सहजयान। तान्त्रिक महायान धर्म का आदिप्रवर्तक कौन था, इस विषय में विवाद है। परन्तु, महायान के 'सूत्रालङ्कार' ग्रन्थ में बुद्धत्व अर्थात् निर्वाण अर्थात् विश्व और विचार की एकात्मता (अद्वैत) अर्थात् तथता (बुद्ध को तथता प्राप्त करने के कारण ही 'तथागत' कहा जाता है) की प्राप्ति के लिए जो पाँच प्रकार की परावृत्तियाँ बताई गई हैं (पञ्चेन्द्रिय परावृत्ति, मानस सार्थाद्ग्रह परावृत्ति, विकल्प परावृत्ति और मैथुन परावृत्ति) उनमें 'परावृत्ति' शब्द के अर्थ पर भारी विवाद है। फ्राँस के प्रसिद्ध प्राच्यशास्त्री प्रो. एस. सिल्वाँ लेवी ने 'मैथुनस्य परावृत्ति' का अर्थ किया है : केन्द्र के चतुर्दिक् परिभ्रमण' (revolution)। इस शब्द का सम्बन्ध बुद्धों और बोधिसत्त्वों के साधनात्मक रहस्यमय युग्मों से जोड़ा गया है। जापान के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. सुजुकि ने मैथुन परावृत्ति शब्द का अर्थ किया है : 'आत्मा की आकस्मिक जाग्रति या उत्पाद'। जर्मनी के विद्वान. प्राच्यशास्त्री डॉ. विण्टरनीत्ज ने इसका सामान्य अर्थ किया है : 'मैथुन से विरति या विरोध' और विशेष अर्थ किया है : 'संसार सम्बन्धी सामान्य विचारणा से अलग रहने की वृत्ति।' परन्तु डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची ने इसका 'मैथुन से विराग' अर्थ न लेकर अर्थ किया है 'मैथुनजनित आनन्द के समान सुख का उपभोग।' यह औपम्य विधान औपनिषदिक साहित्य के 'ब्रह्मानन्द सहोदर' शब्द के समक्ष जा पड़ता है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि परावृत्ति चित्त की वृत्तियों वा वह परिवर्तन है जिसमें साधक संसार के प्रति अपने सामान्य दृष्टिकोण को बदल देता है। पदार्थों को सस्वभाव और संसार को माया मानना सामान्य दृष्टि है। इस सामान्य दृष्टि और व्यवहार से उलट कर पुनः चित्त के नैसर्गिक बिन्दु की ओर चित्त का आवर्तन ही परावृत्ति है। इसी परावृत्ति शब्द के कारण महायान में मैथुन और शक्तितत्त्व का प्रादुर्भाव समझा जाता है।

बौद्ध धर्म में तान्त्रिकता का समावेश करने वाला

आचार्य असंग था या नागार्जुन, यह विवादास्पद है, किन्तु यह निश्चित है कि छठी शताब्दी तक मन्त्र, यन्त्र, कुण्डलिनी, मण्डल, शक्तितत्त्व और पञ्चमकार आदि तान्त्रिक बात महायान में सम्मिलित हो चुकीं थीं और सातवीं शताब्दी तक वज्रयान के रूप में बाकायदा प्रतिष्ठित हो चुकीं थीं।

महायान का काल ईसवी सन् के प्रारम्भ से छठी शताब्दी तक रहा और उसके बाद ७ वीं से १० वीं शताब्दी तक गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में गुप्त रूप से वज्रयान प्रचलित रहा। उसके बाद बारहवीं शताब्दी तक सहजयान का बोलबाला रहा। छठी शताब्दी के बाद ही ८४ सिद्धों का समय आता है जिन्होंने अपने उपदेशों और रहस्यगीतों से तथा अपने शिष्यों की परम्परा द्वारा सहजिया मत का प्रचार किया। सिद्धों का समय ८ वीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी तक माना जाता है। कुछ विद्वानों ने आदिसिद्ध सरहपाद (या सरहपा) को वज्रयानी साधना का आद्य आचार्य माना है।

८४ सिद्धों का युग

इन सिद्धों के नामों के अन्त में प्राय: पाद या नाथ शब्द जुड़ा होता है तान्त्रिकों से ही धीरे-धीरे नाथ सम्प्रदाय का जन्म हुआ। नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध हिन्दू हैं और शेष सिद्ध प्राय: बौद्ध। इन ८४ सिद्धों में से कितने बौद्ध थे और कितने हिन्दू, यह निर्णय करना भी कठिन है। परन्तु, भारतीय इतिहास में एक युग ऐसा रहा है (८ वीं से १२ वीं शताब्दी तक) जब इन सिद्धों का ही बोलबाला था और धार्मिक क्षेत्र में इन्हीं को मान्यता थी। इन सिद्धों में यद्यपि कोई कई ब्राह्मण और क्षत्रिय भी थे। किन्तु अधिकांश लोग नीच वर्णों के थे और शिक्षित भी बहुत कम थे। वज्रयानियों तक के ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये हैं, किन्तु इन सहजयानी सिद्धों के ग्रन्थ लोक-भाषा में लिखे गये हैं। लोक-भाषा का आश्रय लेने के कारण ही जन-सामान्य में इनके मत का प्रचार भी अधिक हुआ। समाज में इन सिद्धों की मान्यता का जहाँ तक प्रश्न है वह इसी से सिद्ध है कि अमरकोष में इन्हें देवयोनि कहा गया है। सिद्धों का एक पर्यायवाची 'गुह्यक' भी है जो उनकी तन्त्र साधना की गुह्यता का द्योतक है। महाकवि कालिदास के मेघदूत में सिद्धांगनाओं और सिद्धवधुओं का भी, किन्नरियों के साथ वर्णन आया है।

इन सिद्धों में सरहपा, लुइपा, कण्हपा, डोम्भिपा, कुक्कुरिपा, गोरखनाथ, मत्स्येन्द्र नाथ, नागार्जुन और कृष्णमूर्ति आदि प्रसिद्ध हैं। सिद्धों ने वज्रयान द्वारा प्रतिपादित साधना को भी कठोर बताकर सहज साधना का प्रचार किया। ८४ सिद्ध ही वाममार्ग के असली आचार्य हैं। इनका कहना था कि वेदादि शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित धर्म का निर्वाह करना कठिन तो है ही, साथ ही कलियुग के लिए वह वर्जित भी है, इसलिए पाप-प्रधान कलियुग में मोक्षप्राप्ति का उपाय केवल सहज सुख की प्राप्ति ही है।

इन ८४ सिद्धों की संस्था ८४ ही क्यों है, इसका भी निश्चित उत्तर नहीं है। अनेक विद्वानों ने सिद्धों की जो नाम-सूची दी है वह जहाँ नामों की दृष्टि से भिन्न है वहाँ संख्या की दृष्टि से भी भिन्न है। परन्तु किसी भी सूची के अनुसार इनकी संख्या ८४ नहीं बनती। ८४ संख्या का अभिप्राय कामशास्त्र के ८४ आसनों से है या ८४ लाख योनियों से, यह कहना भी कठिन है। विद्वानों का अन्तिम निष्कर्ष यही है कि १०८ की तरह (माला में १०८ मनके होते हैं।) यह ८४ संख्या भी रहस्य संख्या (Mystic Number) है।

सिद्धों की भाषा

इनमें से कई सिद्धों की रचनाओं का अनुवाद वापस संस्कृत में भी हुआ है। ये सिद्ध जिस प्रकार अपने आचार-व्यवहार में ऊटपटाँग थे वैसे ही इनकी भाषा भी अटपटी थी, केवल शब्दों की दृष्टि से ही नहीं बल्कि अर्थ की दृष्टि से भी। गोपनीयता रखने के लिए ही उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जिसका अर्थ बहुत बार तो केवल उसकी संस्कृत टीका से ही समझ में आ सकता है, मूल अपभ्रंश भाषा से नहीं। बाद में कबीर की वाणी में जो 'बरसे कम्बल भीगे पानी' के ढंग की उलटबाँसियाँ आई हैं, उनका मूल भी सिद्धों की भाषा ही है। कुछ प्रकाशित और कुछ अप्रकाशित आलोक-निरालोक-सी इनकी भाषा को 'सन्ध्या भाषा' का नाम दिया गया है, परन्तु डॉ. विधुशेखर महाचार्य ने अनेक युक्ति प्रमाणों से सिद्ध करके लिखा है कि उनकी भाषा का नाम 'सन्ध्या भाषा' नहीं,

किन्तु 'संधा-भाषा' है। 'संधा' शब्द का अर्थ उन्होंने किया है-'अभीसंधाय' अर्थात् 'अभिप्रेत्य' अर्थात्-जानबूझकर किसी खास मतलब से वैसी भाषा रखी गई है, जिनसे जानकार लोग उसका अर्थ समझ सकें, गैर जानकार नहीं। इन सिद्धों की भाषा ही आधुनिक समय में प्रचलित विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं की जननी है, इसीलिए उनकी भाषा का यहाँ उल्लेख किया गया है। भारत की अधिकांश आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं (तमिल को छोड़कर) के इतिहास का पर्यालोचन करते हुए सिद्धों की भाषा का अध्ययन अनुपेक्षणीय है। पहले बुद्ध ने संस्कृत का तिरस्कार कर तात्कालिक लोकभाषा पालि (जिसे कदाचित् ग्राम्य भाषा होने के कारण ही पालि नाम दिया गया- पल्ली-गाँव) को प्रश्रय दिया था, किन्तु बाद में उसके अनुयायियों ने पालि की उपेक्षा करके पुन: संस्कृत का आश्रय लिया। इसीलिए महायानियों या बज्रयानियों के ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गए। किन्तु सहजयानी सिद्धों ने पुन: बुद्ध की प्रवृत्ति को अपनाया और उस समय की अपभ्रंश भाषाओं में ग्रन्थ भी लिखे, प्रचार भी किया, तभी वे लोकप्रिय भी हुए।

'हठयोग प्रदीपिका' यद्यपि संस्कृत में लिखा ग्रन्थ है, किन्तु सिद्ध-युग का है। उस समय की प्रचलित धर्मपद्धति का आभास पाने के लिये हठयोग प्रदीपिका का निम्न श्लोक देखिये-

गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातका:।।

हठयोग प्रदीपिका ३.४७।

''कुलीन (जिसे पहले हमने 'कौल' कहा है) मैं उसे मानता हूँ, जो रोज गोमांस खाये और अमरवारुणी पिये, अन्य लोग तो कुलघातक हैं।'' गनीमत है कि फिर अगले श्लोक में ही उसकी यों व्याख्या कर दी गई है-

गा शब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्।।

हठयोग प्रदीपिका ३.४८।

''गो का अर्थ है जिह्वा, उस जिह्वा को उलटा कर तालु में प्रविष्ट करना (हठयोग की एक क्रिया) ही गोमांस का भक्षण है जो बड़े से बड़े पाप का नाश करने वाला है।'' गोमांस भक्षण का यह यौगिक अर्थ तो पता नहीं किसी ने लिया या नहीं लिया, किन्तु इससे कितनों ने गोमांसभक्षण के समर्थन में प्रेरणा पाई, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है।

दार्शनिक पक्ष

हिन्दू (वैदिक) धर्म के प्रति बौद्धों की आम धारणा क्या थी, यह इस उक्ति (सम्भवत: आचार्य धर्मकीर्ति की यह उक्ति है) से पता चल जायेगा।

वेद प्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवाद:
स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेप:।
सन्तापारम्भ: पापहानाय चेति
ध्वस्तप्रज्ञानां पञ्चालिङ्गानि जाड्ये।।

''अक्लमारों की पाँच निशानियाँ हैं- वेद को प्रमाण मानना, इस सृष्टि के कर्त्ता के रूप में किसी ईश्वर को मानना, स्नान करने में धर्म समझना, उच्च वर्ण का अभिमान करना, घोर पाप नष्ट करने के लिये तपस्या करना।'' अर्थात् वेद तथा ईश्वर के प्रति जन-सामान्य की आस्था को विचलित वे कर ही चुके थे। फिर समाज में आई और रिक्तता को भरने के लिये बुद्ध की मूर्ति और नाना बोधिसत्त्वों की उपासना के रूप में जो आडम्बरवाद उन्होंने चलाया वह हिन्दू धर्म में भी नाना देवी-देवताओं के रूप में ज्यों का त्यों उतर आया। फिर मानव की बौद्धिक तृप्ति के लिये जो दार्शनिक आधार तैयार किया गया उसमें मन्त्र-तन्त्र और योग की चमत्कारिक विधियों का ही प्रमुख स्थान रहा। हमने ऊपर लिखा है कि वज्रयान और सहजयान का ही रूपान्तर वाममार्ग है। परन्तु तान्त्रिक साधना की दृष्टि से जो आध्यात्मिकता का आवरण उन लोगों ने अपने क्रियाकलाप पर चढ़ाया है, वह योगदर्शन से ही प्रसूत प्रतीत होता है। योगदर्शन में यदि अष्टाङ्ग योग का विधान है तो बौद्ध तान्त्रिक साहित्य में षडङ्ग योग का वर्णन है।

बिन्दु की सिद्धि -

तान्त्रिक साधना का मुख्य लक्ष्य है बिन्दु सिद्धि। बौद्ध तान्त्रिक परिभाषा में बिन्दु ही बोधिचित्त नाम से प्रसिद्ध है। जैसे मनोमय कोश का सारांश मन है और प्राणमय कोष का सारांश प्राण, वैसे ही अन्नमय कोश का सारांश शुक्र धातु या वीर्य है। अज्ञानी जीव के मन-प्राण-शुक्र ये तीनों

ही चञ्चल होते हैं तथा मलिन होते हैं। बिन्दु शब्द से इन तीनों का ही अभिप्राय है। गुरु की कृपा से और अभिषेक-क्रिया से इन तीनों की शुद्धि होती है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम में बिन्दु-साधना का स्थान ही सर्वोच्च है। प्रथम आश्रम में बिन्दु प्रतिष्ठा होती है, उस समय बिन्दु क्षोभ निषिद्ध है। अशुद्ध बिन्दु क्षुब्ध होने पर प्राकृतिक नियम से अधोगति की ओर उन्मुख होता है। यही उसकी च्युति या पतन है, जिसका फल है मृत्यु। यदि इस बिन्दु को कोई ऊर्ध्वगामी कर सके तो वह अमरत्व लाभ कर सकता है। (**मरणं बिन्दु पातेन जीवन बिन्दु धारणात्।**) ऊर्ध्वरेता की अवस्था प्राप्त करने के लिए बिन्दु का ऊर्ध्वगामित्व आवश्यक है। ऊर्ध्वरेता बन जाने पर मनुष्य का अन्तःस्रोत सदैव ऊर्ध्वगामी रहता है। यही दिव्य अवस्था है।

इसके अलावा योग दर्शन की तरह शरीर को आठचक्रों में विभाजित किया गया है। इन आठचक्रों में सबसे नीचे है मूलाधार चक्र। इसी मूलाधार चक्र में निहित बिन्दु को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए मेरुदण्ड के नीचे मूलाधार के पास ही स्थित कुण्डलिनी को जाग्रत करना होता है। गुरु-कृपा से इस कुण्डलिनी के जागृत होने पर जब ब्रह्मरन्ध्रचक्र में कुण्डलिनी और बिन्दु का मेल होता है, तब मनुष्य ऊर्ध्वरेता की अवस्था तक पहुँच जाता है। ब्रह्मरन्ध्र चक्र ही उष्णीष चक्र या सहस्रदल कमल है। बिन्दु को उद्‌बुद्ध कर कुण्डलिनी के सहयोग से वहाँ तक पहुँचाना ही सिद्धि का चरम लक्ष्य है। ऊर्ध्वरेता बन जाने पर साधक का बिन्दु अधोगामी न रहने के कारण सन्तति-प्रजनन नहीं करता, अर्थात जन्म-मरण का चक्कर छूट गया-यही मोक्ष है। उष्णीष कमल में कुण्डलिनी और बिन्दु के समागम से अमृत का झरना झरने लगता है-वही अमरता या सदाशिवत्व है।

शिव, शक्ति, त्रिशूल

तान्त्रिकों की परिभाषा में बोधिसत्व अपने निर्वाण के पश्चात् इस अवस्था में जब पहुँचते हैं तब सदा प्रज्ञापारमिता के संग आलिंगित रहते हैं। प्रज्ञापारमिता ही तारा है-अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में पहुँची हुई कुण्डलिनी। इसी कुण्डलिनी को उमा या पार्वती कहा गया। बौद्धों ने इस कुण्डलिनी को प्रज्ञा नाम दिया, शैवों ने [illegible] वैष्णवों ने राधा और वाममार्गियों ने ललना, रसना अवधूती या चाण्डाली। ब्रह्मरन्ध्र में कुण्डलिनी और बिन्दु का समागम ही बौद्धों की दृष्टि में तथागतत्व-असली बुद्धत्व, शैवों की दृष्टि में सदाशिवत्व, वैष्णवों की दृष्टि में आनन्दकन्दत्व और वाममार्गियों की दृष्टि में सिद्धत्व है। बौद्धों के अनुसार प्रज्ञा ही शक्ति है। इसी प्रज्ञा को कुण्डलिनी या इड़ा, पिंगला कहा गया है । ब्रह्मरन्ध्र में प्रज्ञा और उपाय (करुणाप्रेरित, बुद्धत्व की ओर अग्रसर बोधिचित्त) दोनों का एकत्र अवस्थान ही निर्वाण या अद्वय है। 'अद्वय-वज्र संग्रह' में लिखा है-'शिवशक्ति समायोगात् जायते चाद्‌भुतं सुखम्'। शिव और शक्ति के समागम से अद्‌भुत सुख होता है। शक्ति का प्रतीक है त्रिकोण या त्रिशूल। त्रिशूलधारी साधु आज भी चाहे जहाँ देखे जा सकते हैं। कुछ तान्त्रिकों ने ओ३म् को भी त्रिशूल का ही रूप सिद्ध किया है। इस त्रिकोण की विस्तृत व्याख्या है। इसी त्रिकोण को, जो प्रज्ञा या शक्ति का दूसरा नाम है, 'हेवज्रतन्त्र' में 'भग' भी कहा गया है। इस भग को महासुख का आवास माना गया है। यही वज्रलय या वज्रासन भी कहा जाता है। इसको सिंहासन बनाकर जो आसीन होते हैं, उन्हें भगवान् कहा जाता है।

वज्रयानियों ने बोधिचित्त को वज्रसत्व नाम दिया है। उनके निर्वाणावस्थापन्न वज्रसत्व की एक मूर्ति तिब्बत में मिलती है जो तिब्बती भाषा में 'याब्-यूम्' या या युगनद्ध मूर्ति कहलाती है। यह युगनद्ध ही, जिसमें अवलोकितेश्वर और प्रज्ञापारमिता तारा वज्रासनस्थ और परस्पर दृढालिंगित अवस्था में दिखाए गए हैं, वज्रयानियों का चरम आराध्य है। शैवों की अर्धनारीश्वर की कल्पना और वैष्णवों के लक्ष्मी-नारायण, राधा-कृष्ण या सीता-राम के युग्मों की कल्पना का मूल यही युगनद्ध है। वज्रयानियों का अद्वैत भी यही है।

वज्र शब्द के अनेक अर्थ हैं? तिब्बती भाषा में वज्र का पर्यायवाची शब्द है 'दोर्जे'। जो आजकल दार्जिलिंग के नाम से विख्यात पर्वतीय स्थान है उसका असली नाम है 'दोर्जेलिङ्'। ऐसा प्रतीत होता है कि वह वज्रयानियों का स्थान रहा है। भूतान में 'भूत' शब्द भी इसी वज्र का पर्यायवाची है। वज्र का अर्थ है कठोर, हीरा या मणि, चमकीली बिजली। यह भी शून्य का प्रतीक है। बौद्धों का

विश्वास है कि बुद्ध ने इन्द्र से वज्र छीन कर इसे बौद्ध-धर्म का प्रतीक बना लिया। बुद्ध इसलिए वज्रपाणि कहलाए। वज्र के तीन शूल हैं : बुद्ध, धर्म और संघ जो बौद्धधर्म में 'त्रिरत्न' कहलाते हैं।

परन्तु वज्रयानियों की परिभाषा में इसका एक और अर्थ भी है। 'ज्ञान-सिद्धि' नामक ग्रन्थ में लिखा है-

शुक्रं वैरोचनं ख्यातं वज्रोदकं तथा परम्।
स्त्रीन्द्रियं च यथा पद्मं वज्रं पुंसेन्द्रियं तथा।।

अर्थात वज्र का अर्थ 'पुंसेन्द्रिय और पद्म का अर्थ है स्त्रीन्द्रिय। बाद में भारतीय संस्कृति में कमल के महत्त्व का उद्गम यही प्रतीत होता है। खजुराहो आदि मन्दिरों में अश्लील मूर्तियाँ वज्र और पद्म के मेल के ही द्योतक हैं। वज्र और पद्म का मेल ही युगनद्ध है। वज्रयानियों का जो सबसे बड़ा मन्त्र है- ''ओं मणिपद्मे हुँ''- वह भी मणि (वज्र) और पद्म के मेल- युगनद्ध की उपासना का चरम साधन माना गया है। वाममार्ग युगनद्ध का ही उपासक है- वह उसे 'शिवशक्ति समागम' कहता है।

वाममार्ग के ग्रन्थों में ध्यान के सम्बन्ध में उपदेश इस प्रकार किया गया है- ''भक्त को चाहिये कि वह अपना सर्वस्व देवी को अर्पण करने के लिए पहले भावना द्वारा अपने हृदय-कमल को देवी का सिंहासन बना ले, फिर हृदय-कमल से टपकने वाले अमृत से देवी के चरणों का प्रक्षालन करे, फिर इन्द्रियों और विचारों की चंचलता को नृत्यवत् प्रस्तुत कर दे। फिर स्वार्थ-शून्यता और वासना-शून्यता के पुष्प उपहार में चढ़ाये। फिर वह सुरा का समुद्र, मांस और भुनी मछलियों का पहाड़, भात-दूध-चीनी और घी का ढेर देवी के सम्मुख धर दे। फिर त्रिपुण्ड्र के अमृत में देवी को स्नान कराये।''

इस सब ध्यान की प्रक्रिया से भक्तों में आध्यात्मिक भावना के बजाय इन्द्रियों को उन्मादित करने वाली आवृत्ति ही अधिक जाग्रत होती होगी, इसमें सन्देह नहीं। फिर जब घण्टे-घड़ियाल बजते हैं, धूप जलती है, फूल महकते हैं, दीपक टिमटिमा कर कुछ प्रकाश और कुछ अप्रकाश का आलम पैदा कर देते हैं और मालाएं लहराने लगती हैं, तब साधिकाओं के जमघट को देखकर साधक भी उद्दाम वासना के सागर में लहराने लगे तो क्या आश्चर्य! फिर तो सूक्ष्म दार्शनिक तत्त्व किसी ज्ञानी के मन के किसी निभृत कोने में भले ही झाँकता रहे, किन्तु जनसाधारण को तो वाममार्ग की ओर ही जाने की प्रेरणा मिलती है।

आधुनिक भाषा में कहना हो तो वाममार्ग को विशुद्ध शिश्नोदरवाद या यौनवाद का मार्ग कहा जा सकता है। इस विषय में वामपन्थी (कम्युनिस्ट) भी ऐतिहासिक वाममार्ग के भूले-बिसरे अवशेष ही प्रतीत होते हैं, परन्तु ऋग्वेद में लिखा है-''या शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः'' (ऋक् ७/२१/५) शिश्न को देव माननेवाले कभी सत्य को नहीं पा सकते।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता, चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -सम्पादक

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

शोक-समाचार

पं. कमलेश कुमार अग्निहोत्री का निधन

आर्यजगत् के कर्मठ विद्वान् पण्डित कमलेश कुमार जी अग्निहोत्री जी का जन्म १ सितम्बर १९३१ के दिन वैष्णव मतानुयायी परिवार में मारोठ (मारवाड़) में हुआ था। आपकी माता का नाम श्रीमती सुवाबाई और पिता का नाम श्री दौलतराम था।

आपके पिता अपने समय के प्रसिद्ध शिल्पज्ञ थे और सीमेन्ट के काम में दक्ष थे। वह घड़ियाँ, ग्रामोफोन, हारमोनियम आदि सुधारने का काम कुशलता से करते थे। चित्रकारी और काँच का काम करने का भी उनका अच्छा अनुभव था। आपकी आजीविका का प्रमुख साधन शिल्पकला था। पण्डित जी तृतीय श्रेणी तक पढ़े थे और बाद में पिताजी के साथ शिल्पकला चित्रकारी आदि करने लगे। पण्डितजी का विवाह उस समय की परिपाटी अनुसार १३ वर्ष की आयु में ग्यारह वर्षीया बालिका के साथ हो गया।

परिवार में माता-पिता के साथ एक बड़ी बहन, एक छोटा भाई और एक छोटी बहन थे। पण्डित जी जब १५ वर्ष के थे तब पिताजी का निधन हो गया। आर्थिक स्थिति विषम थी, किसी का सहयोग भी नहीं मिला। पिताजी के निधन के बाद आप मदनगंज-किशनगढ़ आ गए, जहाँ रतौंधी रोग हो गया, लेकिन अर्थ के अभाव के कारण उपचार नहीं करवा पाये। परन्तु, ईश्वर की कृपा से तीन महीनों में वह रोग भी स्वत: ही ठीक हो गया।

आर्थिक लाभ के लिये घर पर ही बीड़ियाँ बनाने का काम शुरू किया और आपकी धर्मपत्नी ने भी इसे संभाला। वर्ष १९४८ में अपनी बड़ी बहन के ससुराल में महात्मा विरक्तदेव जी महाराज से सम्पर्क हुआ। आपकी प्रेरणा व कृपा से वैदिक सिद्धान्तों का परिचय मिला, सन्ध्या-अग्निहोत्र आदि सीखा। पुष्कर जाकर स्वामी ओमानन्द जी तीर्थ से मिले और योग-क्रियाएँ सीखीं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं में भी गये और ९ दिसम्बर १९४८ के संघ-सत्याग्रह में भाग लेकर तीन महीने किशनगढ़ जेल में रहे। जेल से बाहर आकर घर की आर्थिक स्थिति पर ध्यान दिया, साथ ही भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि का खण्डन भी किया, परिवार में बाल-विवाह आदि रोकने का प्रयास किया। अजमेर में आचार्य भद्रसेन जी से सम्पर्क हुआ और शुद्ध उच्चारण, आसन-व्यायाम आदि का प्रशिक्षण लिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन-चरित्र को पढ़ने से दुर्व्यसनों के दोषों का पता चला और धूम्रपान में सहायक बीड़ी उद्योग को बन्द करवा दिया। अर्थ-संकट को दूर करने के लिये जैन-मन्दिर के शिखर बनाने लगे। पत्नी की घूँघट प्रथा बन्द करवाई और अक्षर-ज्ञान भी करवाया, मन्त्र उच्चारण आदि सिखाया। स्वामी सूर्यानन्द जी के सम्पर्क में यजुर्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न कराया। यहाँ से आपने भजन-लेखन का कार्य शुरू किया जिसे कमलेश-भजनावली में देखा जा सकता है। बाल-विवाहित छोटी बहन को कन्या गुरुकुल भुसावर में प्रवेश दिलवाया, जहाँ तीन वर्ष तक अध्ययन किया। मन्दसौर में एक गुरु जी के निधन होने पर उनकी समाधि-निर्माण का कार्य मिला। श्मशान में रहकर काम करने से वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। उज्जैन से आपने लाउडस्पीकर खरीदा और आर्यसमाज का प्रचार-कार्य शुरू किया लेकिन स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण प्रचार-कार्य में बदलाव लाया। महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी महोत्सव में भाग लेने आप सपत्नीक मथुरा गये।

जैन मन्दिरों में चित्रकारी आदि करते हुए जैनियों से व नवीन वेदान्तियों से शास्त्र-चर्चा भी होती थी। धीरे-धीरे वेद प्रचार में आपका समय अधिक लगने लगा। २९ जनवरी १९६७ के दिन श्री हकीम बीरूमल जी आर्यप्रेमी से अजमेर में सत्संग हुआ। आचार्य सोमदेव जी शास्त्री, पण्डित सत्यानन्द जी वेदवागीश, पूज्य मदनमोहन जी विद्यानिधि आदि के साथ सत्संग हुआ। अनेक स्थानों पर अनेक वर्षों तक वेद-प्रचार करते हुए आप १७ अगस्त १९८० में आर्यसमाज मन्दिर सैजपुर बोघा अहमदाबाद में प्रचारार्थ आये और धीरे-धीरे अहमदाबाद में स्थायी हो गये। नियमित प्रवचन, सन्ध्या-यज्ञ आदि का क्रम चलता

रहा। सेठ श्रीमान् गुरुदासमल जी के विशेष उदारतापूर्वक सहयोग के कारण बहुत प्रचार किया। कच्छ जिले में भी आपके अनेक कार्यक्रम हुए। अन्जार, गांधीधाम, अमृत-फार्म, निरोड़ा, लुडवा, माण्डवी आदि अनेक स्थानों पर आपके कार्यक्रम हुए, जिसमें अनेक परिवारों ने आपसे प्रेरणा पाकर जीवन-परिवर्तन किया। घर-घर यज्ञ और संस्कार होने लगे। मिलनसार स्वभाव होने के कारण आप सबके प्रियपात्र बने।

वैदिक मिशनरी कमलेश कुमार आर्य अग्निहोत्री ने अपने सम्मान में प्राप्त राशि से ही वैदिक प्रवचनों का सार, सैद्धान्तिक चर्चा आदि छोटी छोटी पुस्तकें छपाकर नि:शुल्क वितरित कीं। अनेक परिवारों में ज्ञान को प्रकाशित करने वाले श्री कमलेश कुमार जी आर्यसमाज में सदा-सदा के लिए आदर का स्थान बना गये हैं। जीवन के अन्तिम वर्षों तक आप आर्यसमाज गांधीधाम में स्वयं अकेले चल कर आते थे और मासिक प्रवचन देकर सबको प्रेरित, संस्कारित करते थे। आर्यसमाज गांधीधाम के अनेक परिवार जैसे श्री गुरुदत्त शर्मा परिवार, श्री अशोक भाई जी पोपट परिवार आपके आशीर्वाद के विशेष भागी रहे। जीवन के अन्तिम वर्षों में आप श्री महेन्द्र गांधी जी-अहमदाबाद के गृह में रहकर साधना किया करते थे लेकिन ३-४ दिन पूर्व ही अहमदाबाद से चल कर आप किशनगढ़ आये और दिनांक २५ जुलाई २०२० के दिन आपका निधन हो गया, बिना कष्ट के आपने प्राण त्यागे। वेद प्रचारक के रूप में आपने आर्यजगत् की बहुत सेवा की जिसे सदा याद किया जाता रहेगा। **परोपकारिणी सभा ओर से विनम्र श्रद्धाञ्जलि!**

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.......

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

(व्य. भा.)

प्रधान जी : जैसा मैंने देखा

प्रभाकर आर्य

विश्वास, आशा, अपेक्षा ये शब्द सुनने में भले ही छोटे लगते हों, पर इन्हें भावरूप में उत्पन्न करने के लिये कठोर तपश्चर्या की आवश्यकता होती है। किसी व्यक्ति से आशाएँ यूँ ही नहीं जुड़ जातीं। महाराणा प्रताप ने जंगलों में परिवार सहित घास की रोटियाँ खाईं तब किसी भामाशाह के मन में आशा जगी और उसने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। दयानन्द सरस्वती ने अपना घर-बार छोड़कर, मठ-मंदिरों की अकूत सम्पत्ति को ठोकर मारकर, अपमान और प्राणघातक प्रहारों को सहन करके केवल एक सच के सहारे समाज में हलचल मचाई, तब जाकर किसी श्रद्धानन्द, किसी लेखराम या किसी गुरुदत्त के हृदय में यह आशा जागी कि 'ऐसा सम्भव है' और उस सम्भाव्यता को साकार करने के लिये अपना जीवन दाँव पर लगा दिया। इतिहास ऐसे ही नायकों के जीवनवृत्त से मूल्यवान बनता है। अगर इन महामानवों को अलग करके इतिहास को देखा जाये तो उस इतिहास को पढ़ना 'गड़े मुर्दे उखाड़ना जैसा लगेगा'।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्यु से इस दुनिया की कोई व्यक्तिगत हानि नहीं हुई थी लेकिन फिर भी लोग शोक में डूबे थे, क्यों? क्योंकि उस दिन दयानन्द अकेले इस संसार से नहीं गए थे। कई आशाओं को भी अपने साथ ले गए थे, चारों वेदों के आर्षभाष्य की आशा, वैदिक धर्म की स्थापना की आशा, पाखण्ड के समूल उच्छेदन की आशा। यह आशा कोई बरसाती घास नहीं है जो कहीं पर भी उग जाये, यह तो उस **संजीवनी बूटी** की भाँति है जो दुर्गम पर्वतों की भीषण चट्टानों को भेदकर अंकुरित होती है। इसलिये जब यह आशा टूटती है तब बाहर से सब कुछ शान्त दिखाई देते हुए भी भीतर हृदय में एक आर्तनाद होता है, एक मौन चीख निकलती है और केवल एक ही वाक्य बार-बार मन में घूमता है कि '**यह तो नहीं होना चाहिये था**'।

सन् २०१६ से पहले आर्यसमाज के पास भी एक आशा थी। जिसके भरोसे हम विश्वपटल पर आर्यसमाज की उपस्थिति की कल्पना करने लगे थे। इस आशा को लोग 'धर्मवीर' के नाम से जानते थे। 'परोपकारी' का नया अंक आते ही आर्यजगत मन ही मन इतराता था कि देखो इस बार दयानन्द के सिपाही ने अमेरिका के चुनावों पर सम्पादकीय लिखा है, अब दयानन्द को किसी कोने में नहीं रखा जा सकता, अब विश्व की समस्याओं को वेद के दृष्टिकोण से समझने और समझाने वाला मनीषी है। धर्म की ध्वजा को कर में धर फहराने वाला धरा पर है। धर्म जीवित है क्योंकि धर्मवीर जीवित है। इस प्रकार के भाव मन में नित नई उमंगें जगा देते थे। इस बात को तो उनके विरोधी भी स्वीकार करते हैं कि जब तक धर्मवीर नाम का व्यक्ति था तब तक कोई कार्य असम्भव नहीं लगा। खुले मन से योजनाएँ बनतीं थीं, पूरी होतीं थीं और फिर नई बन जाती थीं। उस समय कोई छोटी बात सुनने को नहीं मिलती थी। मैंने तो उनके मुँह से जब भी सुना बड़ा ही सुना। मुझे दिये गए कुछ आदेश, जिन्हें मैं आज याद भी करता हूँ- '१. तुम्हें अण्डमान में प्रचार करने जाना है 2. उर्दू सीखने जम्मू जाना है 3. परोपकारी विदेशों में ठीक से पहुँचे, इसकी व्यवस्था करो 4. भारत का कोई एक प्रान्त सम्भाल लो और वहाँ सभा की ओर से प्रचार करो (सभा का मतलब परोपकारिणी सभा, महर्षि दयानन्द की आधिकारिक सभा) 5. अजमेर में ईसाई धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं, इस पर काम करो 6. केन्या जाओ और पुरोहित का कार्यभार संभालो आदि।' अगर उन्हें एक अयोग्य बालक से इतनी अपेक्षाएँ थीं तो योग्यों से कितनी अपेक्षाएँ होंगीं और कितना विश्वास किया होगा उन पर, यह अनुमान लगाना कोई कठिन कार्य नहीं है।

प्रधान (धर्मवीर) जी प्रचार एवं गुरुकुल आदि के लिये दान इकट्ठा करने हेतु देशभर में घूमते रहते थे। वे जानते थे कि धन होगा तो ही अन्य कार्य हो पायेंगे, अत:

अपनी अध्ययन-अध्यापन की स्वाभाविक वृत्ति का बलिदान करके धन-संग्रह का कार्य उन्होंने अपने जिम्मे ले लिया। एक शहर से दूसरे शहर, एक गाँव से दूसरे गाँव, रेलवेस्टेशन, बसस्टैंड पर जो भारी थैले लटकाए वे घूमते थे, वे थैले नहीं बल्कि परोपकारिणी सभा के खर्चों की ज़िम्मेदारी थी जो उन्होंने अकेले अपने कन्धों पर ली हुई थी। परन्तु इसके कारण वे अजमेर में बहुत कम ही रह पाते थे। सम्भवत: २०१४ की बात है। परोपकारी पत्रिका का कार्य लगातार बढ़ रहा था। ऐसे में उनके सहयोगियों ने आपसी मतभेद के कारण पत्रिका का कार्य सम्भालने से मना कर दिया। अब पत्रिका का दायित्व भी उन्हीं के कन्धों पर आ गया। आना स्वाभाविक भी था, क्योंकि पराया छोड़ा जाता है अपना नहीं। जो खुद ही सभा बन गया हो वह सभा के किसी भी कार्य से अलग कैसे हो सकता है? लेकिन वे ना तो पत्रिका का ही छोड़ सकते थे और ना ही धन-संग्रह के कार्य को। पता नहीं क्या सोचकर उन्होंने मुझे बुलाया और परोपकारी पत्रिका का कार्य सम्भालने के लिये कहा। मैंने यह कहकर मना कर दिया कि क्योंकि यह कार्य आचार्य जी देखते थे, अत: विरोध होने पर उनके स्थान पर कार्य करना आचार्य जी का अपमान होगा। मेरे इस वाक्य पर माता ज्योत्स्ना जी ने मुझे डाँटा कि सभा का कार्य करना किसी का अपमान कैसे हो सकता है, किन्तु धर्मवीर जी ने कुछ नहीं कहा। उस दिन के अपने वाक्यों को आज याद करता हूँ तो खुद को थप्पड़ मारने का मन करता है।

जैसाकि मैं पहले कह चुका हूँ कि उनकी सोच का दायरा बहुत बड़ा था। चाहे सभा के कार्य हों या व्यवहार, किसी भी विषय में उन्होंने कभी छोटी सोच नहीं रखी। वे ऋषि दयानन्द के बारे में प्राय: कहा करते थे कि 'दयानन्द अपने समय से बहुत आगे की सोचते थे, वे प्राचीन से प्राचीन और आधुनिक से आधुनिक थे। जिस समय लोग पुस्तक छपवाने के बारे में भी मुश्किल से सोच पाते थे उस समय तो ऋषि दयानन्द ने अपना निजी छापाखाना (वैदिक यन्त्रालय) लगा लिया था। दयानन्द सरस्वती यदि आज होते तो उनके पास अपना हैलीकॉप्टर होता।' और ऐसा कहते हुए धर्मवीर जी की आँखों में भी विचारों की वही ऊँचाई दिखाई देती थी। गुजरात प्रचारयात्रा में गांधीधाम के स्वामीनारायण मन्दिर में गये, वहाँ रात्रि को 'फाउन्टेन शो' में आचार्य यम और नचिकेता की कथा से नारायणस्वामी मत को जोड़कर प्रस्तुत किया गया था। उसे देखकर प्रधान जी बोले कि ऐसा शो ऋषि दयानन्द के जीवन पर होना चाहिये। प्रचार-यात्राओं में घूमते हुए वे जो कुछ भी अच्छा देखते, उसे देखकर कहते कि यह तो परोपकारिणी सभा में होना चाहिये था। दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में परोपकारिणी सभा की स्टॉल की व्यवस्था धर्मवीर जी ने मुझे सौंपी और कहा कि प्रगति मैदान के अन्दर विज्ञापन के लिए स्थान भी बिकते हैं, कहीं समाप्त ना हो जायें इसलिए तुम भी सभा के लिये पहले ही खरीद लेना। बचपन में एक कहानी सुनी थी, जिसमें राजकुमारी की जान एक तोते में थी। ठीक उसी तरह प्रधान जी की जान भी सभा और दयानन्द में बसती थी। अगर उन्हें प्रसन्न करना हो तो ऋषि दयानन्द का कोई कार्य कर दीजिये। **'मैंने परोपकारिणी सभा के अतिरिक्त कुछ सोचा नहीं, परोपकारिणी सभा के अतिरिक्त कुछ किया नहीं'** परोपकारिणी सभा के तत्त्वावधान में आयोजित 'ध्यान-पद्धति गोष्ठी' में समापन उद्बोधन के समय बोले गये उनके ये शब्द उनके ध्येय की ओर संकेत करते हैं। हास-परिहास में कभी-कभी मञ्च से बोला करते थे कि ''लोग मुझसे पूछते हैं तुम्हें घरबार छोड़कर यूँ आर्यसमाजों में भटकने से क्या लाभ मिलता है, तब मैं उन्हें जवाब देता हूँ कि एक शराबी शराब पीता है तो क्या लाभ के लिये पीता है? नहीं, उसे शराब की लत है इसलिए पीता है, उसे शराब पीने में मज़ा आता है इसलिए पीता है। वैसे ही मुझे भी दयानन्द और परोपकारिणी सभा के लिये काम करने में आनन्द आता है, इसलिये करता हूँ। **लोग समझते हैं कि मैं आर्यसमाज का प्रचार करके कोई महान काम कर रहा हूँ, अरे, प्रचार करना मेरी मजबूरी है, इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ आता ही नहीं है इसलिए करता हूँ।''** बड़ों की बड़ी बातें...

जब मैंने धर्मवीर जी के प्रथम दर्शन किये वह घटना रोचक भी है और प्रेरणादायी भी। उस घटना से आर्य संस्था के अधिकारी की जो छवि मेरे मन पर बनी, संभवत:

उसी के कारण कोई और छवि अब सरलता से मन को स्वीकार नहीं होती। जब मैंने गुरुकुल ऋषि उद्यान में प्रवेश लिया तब प्रधान जी (धर्मवीर जी) सभा के मन्त्री हुआ करते थे। सब उन्हें मन्त्री जी के नाम से ही बुलाते थे। गुरुकुल में मन्त्री जी की खूब चर्चाएँ होती थीं, पर दर्शन करने का सौभाग्य नहीं मिल पाया था, क्योंकि उस समय वे प्रचार-यात्रा पर थे। ब्रह्मचारियों की बातें सुनकर लगता था कि कोई रौबदार नेता की तरह दिखने वाला जिसके साथ हर समय कोई सहयोगी/सेवक रहता होगा, अपनी गाड़ी होगी, ठाठ-बाठ होंगे। इसलिए उनकी चर्चा सुनकर उन्हें देखने की इच्छा हो उठती थी। मन्त्री जी का निवास कक्ष गुरुकुल भवन से अलग लेखराम भवन में ऊपर वाले माले पर था, मन्त्री जी जब बाहर प्रचार में जाते तो अपने कक्ष की चाबी आचार्य जी को दे जाते थे। रात्रि को सोते समय सभी भवनों की सीढ़ियों के दरवाजे बन्द करके ताला लगा दिया जाता था, जो कि प्रात:काल ४ बजे ही खुलता था। प्रात: ४ बजे गुरुकुल के विद्यार्थी यज्ञशाला में आकर मन्त्रपाठ करते थे। एक दिन जब विद्यार्थी मन्त्रपाठ के लिए यज्ञशाला में आये तो देखा कि कोई व्यक्ति दरी बिछाकर लेटे हुए हैं। गर्मियों के दिन थे सो मच्छरों की भरमार थी, मच्छरों से बचने के लिये उन्होंने एक पतली धोती शरीर पर डाली हुई थी। विद्यार्थी जिज्ञासावश निकट गए और उन्हें देखते ही पैर छूने शुरू कर दिये। सबको देखकर मैंने भी पैर छूकर नमस्ते की। फिर किसी ने उनका थैला उठाया और कोई लेखराम भवन की सीढ़ियों का दरवाज़ा खोलने के लिये दौड़ा। तब किसी वरिष्ठ विद्यार्थी ने उनसे विनम्रतापूर्वक पूछा कि आप यहाँ ज़मीन पर मच्छरों में क्यों सोये, रात को ही आचार्य जी को फोन कर दिया होता तो आपके कक्ष का ताला खोल देते। तब उनके मुख से जो शब्द निकले, उन्हें सुनकर लग रहा था मानो रामायण का कोई ऋषि-मुनि संवाद कर रहा हो। वे बोले- ''अरे भले आदमी! बस थोड़ी जल्दी आ गई। रात के २ बजे फोन करता तो तुम्हारे आचार्य जी की नींद खराब होती, २ घंटे की ही तो बात थी, इसलिए यहीं लेट गया'' ये साधुमूर्ति परोपकारिणी सभा के (पदेन और व्यावहारिक दोनों प्रकार से) मुख्य अधिकारी डॉ. धर्मवीर जी थे। यह बात गले उतरने वाली नहीं थी कि कोई व्यक्ति यात्रा से थककर रात को आये और किसी की ५ मिनट की नींद ना ख़राब हो जाए, इसलिए खुद ज़मीन पर मच्छरों में लेटा रहे। फिर मन में सोचा कि ये तो केवल पद से मन्त्री हैं किन्तु हमारे आचार्य जी बड़े विद्वान् हैं इसलिये मन्त्री जी ने उन्हें नहीं जगाया। मगर यह मूर्खता अगले ही दिन यज्ञोपरान्त उनका व्याख्यान सुनकर समाप्त हो गई। कुछ दिनों बाद यह भी पता लगा कि हमारे आचार्य जी तो मन्त्रीजी के शिष्य रहे हैं। कुछ लोग कुछ ना होकर भी अपने को सब कुछ बताने का प्रयत्न करते हैं, कुछ लोग कुछ होकर बहुत कुछ दिखाने का प्रयास करते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जो 'सब कुछ' होकर भी 'कुछ नहीं' दिखने में ही आनन्दित रहते है। **बस उस 'सब कुछ होकर भी कुछ नहीं दिखने का नाम 'धर्मवीर' है।** ऐसी कई घटनाएँ उनके परिचितों से सुनने को मिल जाएंगी।

धर्मवीर जी परोपकारिणी सभा के जिस-जिस पद पर रहे, वह पद उपाधि बन गया। धर्मवीर जी से पहले शायद ही किसी को परोपकारिणी सभा का अधिकारी बनने की तीव्र लालसा हो, पर आज उस सभा का सदस्य बनना भी गौरव की बात होती है। ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा को उसके उच्चासन पर पुन: विराजमान करने का महनीय कार्य धर्मवीर ज़ी ने किया है और यह कार्य उन्होंने स्वत्व को मिटाकर किया है। धर्मवीर चाहते तो उनकी कलम किसी राष्ट्रीय समाचार पत्र का सम्पादकीय लिख रही होती, धर्मवीर चाहते तो कोई बड़ा सा राष्ट्रीय सम्मान पत्र उनके पास भी होता, धर्मवीर चाहते तो उनके पास भी गाड़ी-बंगले होते, धर्मवीर चाहते तो वे भी किसी विश्वविद्यालय के कुलपति की कुर्सी पर बैठे होते, धर्मवीर चाहते तो वे भी सांसद या मन्त्री होते, धर्मवीर चाहते तो लाखों-करोड़ों लोग आज उनके अनुयायी होते। किन्तु... किन्तु अगर वे ऐसा चाहते तो मैं यह लेख भी नहीं लिख रहा होता, अगर वे ऐसा चाहते तो आज चार साल बाद भी उनका नाम आते ही आँसू ना बहते, अगर वे ऐसा चाहते तो सत्य और धर्म अपनी सिद्धि के लिए आज भी किसी उदहारण की खोज में भटक रहे होते, अगर वे

ऐसा चाहते तो वे धर्मवीर ही नहीं होते। उन्होंने अपनी सारी योग्यता, सारी ऊर्जा केवल ऋषि दयानन्द के लिये लगा दी।

कभी-कभी तो मन स्वयं को ही धिक्कारने लगता है कि समय रहते हमने भी तो उनके कन्धे से कन्धा मिलकर उन्हें यह अहसास ही नहीं कराया कि दयानन्द के इस मिशन में आप अकेले नहीं हैं, हम भी आपके साथ हैं। अरे जो व्यक्ति किसी के छोटे से कार्य को देखकर उसके गुण गाता नहीं थकता, ऋषि के मिशन में किया गया किसी का थोड़ा सहयोग जिसके मुख पर प्रसन्नता ला देता हो, सोचिये, अगर उन्हें अपना कोई सहयोगी मिला होता तो क्या होता। उनका बस चलता तो वे दुनियाभर की दीवारों को वेद की ऋचाओं से भर देते। मगर हमने क्या किया? ७० वर्ष की आयु में २० किलो के बैग कन्धों पर लादकर यात्राएँ करने पर मजबूर कर दिया, क्यों कोई एक भी यह कहने का साहस नहीं कर सका कि धन-संग्रह का कार्य हम पर छोड़िये, आप पुस्तक लिखिये, उपदेश कीजिये। कोई बेटा सीधे-सीधे अपने बूढ़े पिता को यह नहीं कहता कि हमारे लिये कमाकर लाओ, पर अगर बेटा नहीं कमाएगा तो पिता को मेहनत करनी ही पड़ेगी, क्योंकि उसे अपने दायित्व पता हैं।

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी डॉ. धर्मवीर जी का जन्मदिवस है और दो महीने बाद उनको गये हुए चार वर्ष बीत जायेंगे। इन चार वर्षों की अनुभूति बताती है कि केवल धर्मवीर जी ही नहीं गये, सत्य का उदाहरण भी चला गया, दयानन्द की दहाड़ चली गई, आर्यसमाज को राष्ट्रीय परिदृश्य में देखने की आशा चली गई, सत्य का पक्ष और असत्य का विरोध चला गया, अरे आर्यसमाज की आवाज़ चली गई, सिद्धान्तों की अडिगता चली गई, निर्भयता, प्रखरता और निष्पक्षता चली गई। अब फिर कोई धर्मवीर जन्म लेगा, फिर से आशा की किरण दिखाई देगी, क्योंकि आत्मा कभी नहीं मरती।

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किय जात है।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का निःशुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **निःशुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८/२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ जुलाई २०२० तक)

१. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर २. श्रीमती संतोष अरोड़ा, अजमेर ३. श्रीमती सूर्यकिरण भण्डारी, जोधपुर ४. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु, ५. स्व. माता कपूरी देवी, जयपुर ६. श्री प्रेम खट्टर, फरीदाबाद ७. श्री तिलकराज, गुरुग्राम।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३१ जुलाई २०२० तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला केण्ट २. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ३. श्री उमेश शर्मा, अजमेर ४. श्री हरसहाय सिंह गंगवार, बरेली ५. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ६. श्री यदुनाथसिंह, इन्दौर।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ पृष्ठ : २१६ मूल्य : १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा पृष्ठ : ८० मूल्य : ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर पृष्ठ : ३०४ मूल्य : २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग पृष्ठ : २८८ मूल्य : १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी पृष्ठ : १७४ मूल्य : १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अतः 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का निःशुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के निःशुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अतः प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान' में श्रावणी पर्व पर नवागंतुक ब्रह्मचारियों का उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार

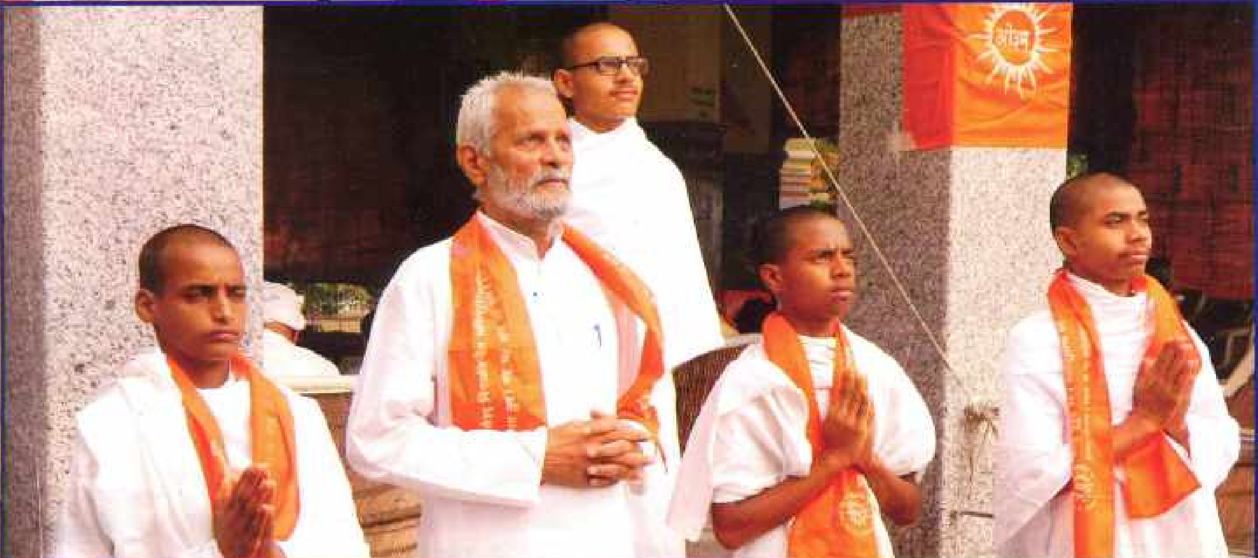

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक प्रेषण : १५-१६ अगस्त २०२० आर.एन.आई. ३९५९/५९

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान' में श्रावणी पर्व पर नवागंतुक ब्रह्मचारियों का उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार

प्रेषकः
परोपकारिणी सभ
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००

665 आजीवन
श्री मंत्री, आर्य समाज
15-हनुमान रोड, नई दिल्ली, दिल्ली-110001